शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 14 अंक : 6 1 जनवरी 2022

पौष मास, विक्रम संवत् 2078

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा

❖

सम्पादक
डॉ. राजेन्द्र शर्मा

❖

सह सम्पादक
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय**

कार्यालय प्रभारी :
आलोक चतुर्वेदी : 8619926481

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

भारतीयता का अजस्र प्रवाह प्रयागराज

❑ **प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय**

प्रयाग की चर्चा कुंभ तथा कुंभ मेला के बिना पूरी नहीं होती। देवता और दैत्यों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था। समुद्र से चौदह रत्न निकले। समुद्र से अमृतकुंभ भी निकला। उसके लिए देवता और दैत्यों में संघर्ष प्रारंभ हो गया। दैत्य अमृतकुंभ लेकर भागे। देवताओं ने उनका पीछा किया। भागने के प्रयास में अमृतकुंभ से अमृत चार स्थानों पर छलक कर गिरा। उसमें से एक स्थान प्रयागराज है। बड़े श्रम और चतुराई से देवताओं ने अमृत कुंभ को प्राप्त किया। बारह वर्षों पर प्रयाग में कुंभ स्नान होता है। छह वर्ष बाद अर्धकुंभ का स्नान होता है। कुंभ के अवसर पर प्रयाग आए तीर्थयात्रियों के लिए उनकी दिनचर्या का भी वर्णन मिलता है।

4

अनुक्रम

3.	सम्पादकीय	– डॉ. राजेन्द्र शर्मा
7.	भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता के तीर्थ	– डॉ. गीताराम शर्मा
11.	भारत की राष्ट्रीय एकात्मता का आदि प्रतीक : काशी..	– डॉ. निर्भय कुमार
14.	पुण्यतीर्थ गंगासागर एक छोटे से भारत की तलाश में	– सौमक पोद्दार
16.	राजस्थान का जलियांवाला बाग 'मानगढ़ स्वतंत्रता...	– डॉ. प्रमोद कुमार वैष्णव
20.	भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संवाहक संत मावजी	– डॉ. लक्ष्मण लाल सरगड़ा
26.	भारतीय पर्वत और नदियों की तीर्थ-संस्कृति	– डॉ. शिवशरण कौशिक
29.	राष्ट्रीय एकात्मतामय तीर्थ राजस्थान का रामदेवरा	– डॉ. ओमप्रकाश पारीक
32.	Dakshineswar Temple - Saga of Hindu...	– Narayan Chakrabarty
40.	Significance of Holy Shrines in Bharat's...	– Dr. TS Girishkumar

Religious Shrines of Jammu and Kashmir

Shankaracharya Temple

❑ **Darshan Bharti**

Shankaracharya Temple dedicated to Lord Shivais believed to be the oldest shrine for worship in the Kashmir Valley. The Shankaracharya Temple is an ancient Hindu shrine located on top of the Gopadari hill on the Zabarwan Mountain in the scenic city of Srinagar. It is also known as the Jyesteshwara temple and Pas-Pahar by Buddhists and recently also took on the moniker of Takht-e-Suleiman (Throne of Solomon). Located at a height of about 1100 feet, the shrine offers a panoramic view of Srinagar city.

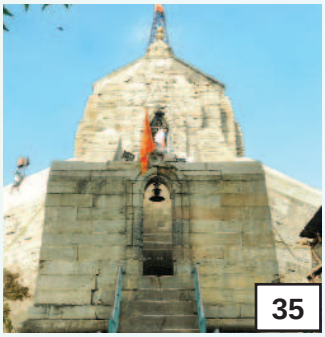

35

संपादकीय

डॉ. राजेन्द्र शर्मा
सम्पादक

शीत ऋतु का यह मार्गशीर्ष महीना 1971 के युद्ध की 50वीं जयंती और काशी विश्वनाथ मंदिर के पुनरुद्धार को लेकर विशेष रूप से चर्चा में रहा है। सभी हर्ष और गर्व से स्मरण करते हैं 16 दिसम्बर 1971 के दिन को। इस दिन ढाका में 93 हजार पाकिस्तानी सैनिकों ने लेफ्टिनेंट जनरल नियाजी के साथ भारतीय सेना के लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के समक्ष समर्पण किया था। सैन्य इतिहास में इतनी बड़ी संख्या में सैनिकों के आत्मसमर्पण की यह प्रथम अैर अब तक का अंतिम दृष्टान्त है। स्वतंत्र भारत के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है। यह अभूतपूर्व जीत। तथ्य और सच्चाई तो यह है कि अपने जन्म के समय से ही पाकिस्तान के पश्चिमी हिस्से के लोग पूर्वी हिस्से के बंगाली मुसलमानों को कमतर आँकते थे, उनके साथ भेदभाव करते थे और उन्हें हिकारत भरी दृष्टि से देखते थे। इसीसे पूर्वी पाकिस्तान में पश्चिमी पाकिस्तान के प्रति विद्वेष की भावना पनपने लगी और समय के साथ बढ़ने लगी। इसी की परिणति 1970 के आम चुनावों और 1971 के युद्ध में हुई। इस युद्ध में 2307 भारतीय सैनिक शहीद हुए और इससे तीन गुना घायल। इस ऐतिहासिक विजय के 50 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर देश के सभी वीर जवानों और शहीदों को कोटि-कोटि नमन!

इसी मार्गशीर्ष माह की शुक्ल दशमी को 'श्री काशी विश्वनाथ धाम' राष्ट्र को समर्पित किया गया। वस्तुत: काशी भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक राजधानी है। देश के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है - काशी विश्वनाथ। बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र सारनाथ भी यहीं है जहाँ महात्मा बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया था। काशी कबीर की कर्मभूमि है तो रैदास की जन्मभूमि। माँ अन्नपूर्णा स्वयं यहाँ विराजती हैं। काशी में ही गोस्वामी तुलसीदास के अंदर कवित्व-शक्ति का प्रस्फुरण हुआ था। 'विनय-पत्रिका' की रचना के समय वह काशी के असीघाट पर रहते थे। यह धाम भारत की परम्पराओं का, प्राचीनता का और राष्ट्रीयता का प्रतीक है। वर्ष पर्यन्त देश के विभिन्न भागों से बड़ी संख्या में श्रद्धालु यहाँ आते हैं। महाशिवरात्रि और सावन में तो यहाँ जन सैलाब उमड़ता है।

352 वर्ष पूर्व 1669 में औरंगजेब ने इस नगरी पर आक्रमण कर मंदिर परिसर को छिन्न-भिन्न कर दिया था। परन्तु 1780 में महारानी अहिल्याबाई ने मंदिर का जीर्णोद्धार कराया और अब सम्पूर्ण क्षेत्र का पूरी भव्यता के साथ पुनर्निर्माण हुआ है। मंदिर परिसर जो पाँच हजार वर्ग फीट में था, अब बढ़कर सवा पाँच लाख वर्ग फीट का हो गया है। कॉरिडोर को सुंदर रूप देने के लिए मकराना मार्बल, चुनार का लाल बलुआ पत्थर, मैडोना स्टोन सहित सात विशेष पत्थरों का उपयोग हुआ है। मुख्य परिसर में चारों ओर नक्काशीदार खम्भे, मेहराब और महीन जालियाँ लगाई गई हैं। चार वेदों की तर्ज पर बने चार द्वार अपनी भव्यता स्वयं ही कह रहे हैं। दो साल पहले तक मंदिर क्षेत्र में प्रवेश करने और दर्शन करने में मशक्कत करनी पड़ती थी वहीं अब एक समय में दो लाख श्रद्धालु आराम से प्रवेश कर सकते हैं।

ऐसा बताया जाता है कि पहले गंगा के तट से बाबा विश्वनाथ के दर्शन होते थे और बाबा के द्वार से माँ गंगा के। लेकिन समय के साथ अतिक्रमण और व्यावसायिक दबाव की वजह से अवरोध पर अवरोध उत्पन्न होते गए और विश्वनाथ धाम पहुँचने की गलियाँ संकरी होती गई। परिणामत: विश्वनाथ के द्वार से माँ गंगा की छवि देख पाना असंभव हो गया था। लेकिन काशी विश्वनाथ धाम के पुनर्निर्माण से समस्त अवरोध समाप्त हो गए। अब माँ गंगा के तट से बाबा विश्वनाथ के दर्शन हो जाते हैं और बाबा के द्वार से माँ गंगा के साथ-साथ मणिकर्णिका और ललिता घाट को भी निहार सकते हैं।

काशी विश्वनाथ धाम में मुख्य मंदिर परिसर के साथ भोगशाला, मुमुक्षु भवन, वैदिक केन्द्र, आध्यात्मिक पुस्तकालय, सिटी म्यूजियम, वाराणसी गैलरी, बहुदेशीय हॉल और जलपान केन्द्र भी बने हैं। काशी के इस कायाकल्प से उत्तर प्रदेश में समृद्धि के नए द्वार खुल रहे हैं। सांस्कृतिक व धार्मिक पर्यटन के कई गुना बढ़ने की संभावना है। धार्मिक पर्यटन बढ़ने से नए होटल, गेस्ट हाउस बनेंगे तथा हस्तशिल्प, साड़ी और हथकरघा उत्पादों को नया बाजार मिलेगा। इन सबसे रोजगार के अवसर बनेंगे और बढ़ेंगे। गंगा में तो क्रूज चलने शुरू हो गए हैं। वाराणसी से हल्दिया तक जलमार्ग से माल परिवहन भी हो रहा है। वाराणसी-दिल्ली के बीच हाई स्पीड रेल प्रोजेक्ट के बन जाने पर आर्थिक विकास को और पंख लगेंगे।

भारत स्वतंत्रता के इस अमृत काल में आत्मनिर्भर कदमों से हर दिशा में दृढ़ता से आगे बढ़ रहा है। नये भारत में भगवान श्रीराम की जन्मभूमि से जुड़े मुद्दे का शांति व सद्भाव के साथ समाधान ही नहीं हुआ है अपितु गौरवशाली धार्मिक स्थलों का पुनरुद्धार भी हो रहा है। लेकिन, इसके साथ ही देश ने गलवान में चीन को उसकी हद भी समझाई है। देश में बनी कोविशील्ड एवं कौवेक्सिन ने लोगों को कोरोना से लड़ने का सामर्थ्य भी दिया है। सात देशों को भारत रक्षा उपकरणों का निर्यात कर रहा है तो ओलम्पिक में अब तक का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करते हुए सात पदक जीते हैं। स्वतंत्र भारत के इतिहास में किसी सरकार का सामना कोरोना जैसी वैश्विक महामारी से नहीं पड़ा था। इसी की वजह से अर्थव्यवस्था की गति धीमी थी लेकिन अब इससे उबरते हुए अर्थव्यवस्था ने फिर रफ्तार पकड़ ली है। इसलिए अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसी 'मूडीज' ने अब भारतीय अर्थव्यवस्था को उम्मीद से बेहतर प्रदर्शन करने वाली इकोनॉमी कहा है। ❑

भारतीयता का अजस्र प्रवाह प्रयागराज

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
अधिष्ठाता, कला संकाय,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर (राज.)

प्रयागराज भारतीय स्मृति और चेतना के अविरल अविराम स्मरण का नाम है। यह गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम के साथ गंगा बनकर प्रवाहित होने की प्रेरणा और दिशा है। यह भारतीयता के आदिकाल की स्मृति, मध्यकाल के उत्थान और ध्वंस और आधुनिकता के विकास का साक्षी है। मकर राशि के सूर्य की तेजस्विता के साथ विकसित होती हुई भारतीय चेतना के तेज और ओज का ज्वलन्त उदाहरण है प्रयागराज।

प्रयाग का स्मरण करते ही उस पवित्र भूमि का ध्यान आता है जहाँ सृष्टि के आदि में ब्रह्माजी ने प्रकृष्ट यज्ञ किया था। प्रकृष्ट यज्ञ के कारण ही इस स्थान को प्रयाग कहा गया। स्कंदपुराण के अनुसार 'प्रकृष्टं सर्वयागेभ्य: प्रयाग इति उच्यते'। यहाँ गंगा, यमुना तथा सरस्वती का संगम है। संगम स्थान पर गंगा और यमुना के जल के अलग-अलग रंगों का दर्शन स्पष्ट रूप में किया जा सकता है। सरस्वती नदी गुप्त है। शास्त्रों में संगम में स्नान और प्रयाग में स्थित मंदिरों एवं आश्रमों के दर्शन के फल का वर्णन अनेक स्थानों पर किया गया है। बतलाया गया है कि संगम में स्नान करने वालों को ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है। अक्षयवट की छाया से मनुष्य को दिव्य सत्वगुण की प्राप्ति होती है तथा भगवान माधव के दर्शन करने वालों के सभी प्रकार के पाप कट जाते हैं। पद्मपुराण में तीर्थराज प्रयाग के महत्त्व को विस्तारपूर्वक स्थापित किया गया है। प्रयाग में माघस्नान का विशेष महत्त्व है। श्रद्धालु प्रतिवर्ष वहाँ कल्पवास करते हैं। पद्मपुराण में बतलाया गया है कि माघ स्नान करने वाले के पुण्य की गणना ही नहीं की जा सकती है-

प्रयागे तु नरो यस्तु
माघस्नानं करोति च।
न तस्य फलसंख्यास्ति
शृणु देवर्षिसत्तम।।

प्रयाग को सभी तीर्थों का अधिपति कहा जाता है तथा सातों पुरियों को उनकी रानी। गंगा-यमुना की धारा के कारण यह स्थान तीन क्षेत्रों में बँटा हुआ है। ये तीनों भाग अग्निस्वरूप यज्ञवेदी हैं। प्रयाग की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए पद्मपुराण में कहा गया है कि -

ग्रहाणां च यथा सूर्यो
नक्षत्राणां यथा शशी।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं
प्रयागाख्यमनुत्तमम्।।

जैसे ग्रहों में सूर्य, नक्षत्रों में चंद्र है, वैसे ही तीर्थों में प्रयागराज सर्वोत्तम है।

तीर्थों में किये जाने वाले कर्मों का वर्णन भी शास्त्रों में किया गया है। प्रयाग में मुण्डन का विशेष महत्त्व है। यहाँ पर

मुण्डन कराने की विशेष विधि भी है। त्रिवेणी संगम पर स्नान के पश्चात प्रमुख देवमंदिरों के दर्शन का विधान है। धार्मिक दृष्टि से प्रयागराज के प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं - 1. माधव (इसे जलरूप में ही माना जाता है तथा त्रिवेणी संगम पर इसका दर्शन कराया जाता है। पुस्तकों में अक्षयवट के पास वेणीमाधव वैष्णवपीठ की चर्चा है। प्रयागराज में 12 माधव बतलाए गए हैं। 2. प्रयाग किले के भीतर अक्षयवट है। अक्षयवट के पास अनेक देवताओं के दर्शन किये जा सकते हैं। 3. हनुमान मंदिर। यहाँ भूमि पर लेटे हुए हनुमान जी के दर्शन का विशेष महत्त्व है। 4. सोमनाथ-यह मंदिर यमुनाघाट पर है। 5. नागवासुकि - यह बक्सी मुहल्ले में गंगातट पर है। 6. मनकामेश्वर - यह किले से पश्चिम दिशा में है। 7. शिवकुटी। 8. नागवासुकि, 9. बलदेव जी, 10. भरद्वाज आश्रम, 11. बिंदुमाधव, 12. अलोपी देवी, 13. समुद्रकूप तथा हंसकूप। प्रयागराज में अन्तर्वेदी तथा बहिर्वेदी परिक्रमा का विधान है। अन्तर्वेदी परिक्रमा त्रिवेणी में स्नान तथा जलरूप में विद्यमान बिंदुमाधव के पूजन के पश्चात प्रारंभ होती है। अन्तर्वेदी परिक्रमा के अन्तर्गत यमुना जी में स्थित देवी-देवताओं के अतिरिक्त तट पर स्थित मंदिरों के दर्शन का विधान है। बहिर्वेदी परिक्रमा 10 दिन में पूरी होती है। प्रत्येक दिन के दर्शन का अलग-अलग विधान है। प्रतिदिन दर्शन किये जाने वाले मंदिरों के नाम तय हैं। रात्रि विश्राम के स्थान भी निर्धारित किये गए हैं। प्रयागराज से चारों तरफ लगभग 60 कि.मी. की दूरी पर एक दर्जन से अधिक सुप्रसिद्ध स्थान हैं। इन प्रमुख तीर्थों के दर्शन के लिए भी दर्शनार्थी प्रतिदिन बड़ी संख्या में जाते हैं। इनमें उल्लेखनीय है - ऋषियन, राजापुर, इमिलियन देवी, दुर्वासा आश्रम, ऐन्द्रीदेवी, लाक्षागृह, सीतागढ़ी, श्रृंगवेरपुर, कड़ा, कौशाम्बी आदि। महाभारत के वनपर्व में प्रयाग में गंगा स्नान का महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है कि गंगा में जहाँ भी स्नान किया जाय वह कुरुक्षेत्र के समान पुण्यदायिनी है। कनखल में गंगास्नान का विशेष माहात्म्य है। प्रयाग में गंगास्नान का महत्त्व सर्वाधिक है -

कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र तत्रावगाहिता।
विशेषो वै कनखले प्रयागे परमं महत्।।

प्रयागराज तीर्थ के महत्त्व को महाभारत के वनपर्व में विस्तारपूर्वक बतलाया गया है। इस तीर्थस्थान में ब्रह्मा आदि देवता, दिक्पाल, लोकपाल, पितर, सनत्कुमार, अंगिरा,नाग, सुपर्ण, सिद्ध, सूर्य, नदी, समुद्र, गंधर्व, अप्सरा तथा ब्रह्मानी सहित भगवान विष्णु निवास करते हैं। यहाँ तीन अग्निकुण्ड हैं। इनके बीच से गंगा वेगपूर्वक बहती है। सूर्यपुत्री लोकपावनी यमुना देवी यहाँ गंगा में मिलती है। गंगा और यमुना का मध्यभाग पृथ्वी का जघन माना गया है। प्रयागराज को देवताओं द्वारा संस्कार की हुई यज्ञभूमि कहा गया है। यहाँ पर किये जाने वाले दान का भी विशिष्ट महत्त्व है। साठ करोड़ दस हजार तीर्थों का निवास प्रयागराज में बतलाया गया है। चारों विद्याओं के ज्ञान और सत्य बोलने वाले के पुण्य के बराबर गंगा-यमुना के संगम में स्नान का पुण्य है। महाभारत में लिखा है-

चतुर्विद्ये च यत् पुण्यं सत्यवादिषु चैव यत्।
स्नात एव तदाप्नोति गंङ्गायमुनसंगमे।।

वनगमन के समय प्रभु श्रीराम ने प्रयागराज में लक्ष्मण और सीता के साथ सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत की थी। श्रीराम ने प्रयाग में भरद्वाज ऋषि से आगे जाने का मार्ग भी पूछा था। राम, लक्ष्मण और सीता के आश्रम से प्रस्थान के समय भरद्वाज मुनि ने स्वस्तिवाचन किया। यह स्वस्तिवाचन वैसा ही था जैसे कोई पिता अपने औरस पुत्रों की यात्रा के समय मंगलकामनाएँ करता है। यात्रा के समय मंगलकामना की भारतीय परम्परा का वाचक यह प्रसंग है। मुनि की सहजता और उदारता का प्रसंग प्रयागराज में घटित हुआ। वाल्मीकि रामायण में विस्तारपूर्वक श्यामवट की चर्चा है। मार्ग का वर्णन करते समय भरद्वाज मुनि ने विशाल वटवृक्ष के विषय में बतलाते हुए कहा है कि उसके पत्ते हरे रंग के हैं। वह बहुत से वृक्षों से घिरा हुआ है। उसकी छाया के नीचे अनेक सिद्ध पुरुष रहते हैं। महर्षि ने यह भी बतलाया कि सीता ने वहाँ पहुँचकर उस वृक्ष से आशीर्वाद माँगा। इच्छा होने पर कुछ समय वहाँ निवास करें। महर्षि भरद्वाज के लौटने पर राम ने लक्ष्मण से कहा कि मुनि ने जो कृपा की है उससे लगता है कि हम लोगों ने कभी महान पुण्य किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में भरद्वाज ऋषि, संगम और प्रयागराज के महत्त्व को बतलाया है।

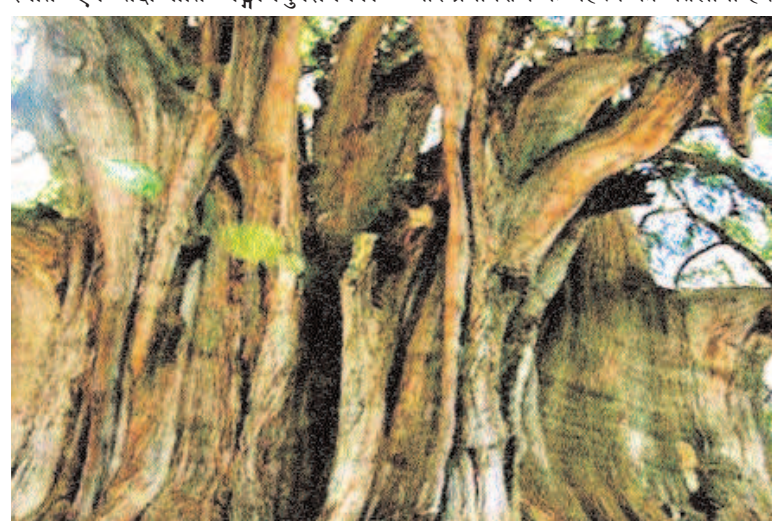

तुलसीदास ने भरद्वाज ऋषि को तपस्वी, मन को वश में रखने वाला, जितेन्द्रिय, दया के निधान तथा परमार्थ मार्ग में चतुर कहा है। तीर्थराज प्रयाग के महत्त्व को बतलाते हुए कहा है कि जब माघ में सूर्य मकर राशि पर जाते हैं तब सभी लोग तीर्थराज प्रयाग में आते हैं। देवता, दनुज, किन्नर और मनुष्यों के समूह आदरपूर्वक गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम पर स्नान करते हैं।

माघ मकरगत रवि जब होई।
तीरथ पतिहिं आव सब कोई।
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं।
सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी।।

तुलसीदास ने वर्णन के क्रम में वेणीमाधव के चरणों के पूजन और अक्षयवट को स्पर्श कर पूजन की भी चर्चा की है। वे भरद्वाज ऋषि के आश्रम का वर्णन करना नहीं भूलते। तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने वाले भरद्वाज ऋषि के आश्रम में जाते हैं। प्रात:काल स्नान करके भगवान की कथाएँ सुनते हैं। पूरे माघ के महीने में संगम पर स्नान और धर्म तत्त्व का निरूपण चलता रहता है। वहाँ पर अनेक विषयों पर चर्चा होती है। तुलसीदास ने एक दोहे में कहा है -

ब्रह्म निरूपन धरम निधि
बरनहिं तत्त्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै
संजुत ग्यान बिराग।।

प्रयाग आर्थिक रूप से भी प्राचीन काल से ही संपन्न रहा है। राम गंगा पार करके प्रयाग पहुँचते हैं। वाल्मीकि ने लिखा है कि यह नगर धनधान्य से संपन्न था। वहाँ के लोग स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट थे।

प्रयाग की चर्चा कुंभ तथा कुंभ मेला

प्रयाग की चर्चा कुंभ तथा कुंभ मेला के बिना पूरी नहीं होती। देवता और दैत्यों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था। समुद्र से चौदह रत्न निकले। समुद्र से अमृतकुंभ भी निकला। उसके लिए देवता और दैत्यों में संघर्ष प्रारंभ हो गया। दैत्य अमृतकुंभ लेकर भागे। देवताओं ने उनका पीछा किया। भागने के प्रयास में अमृतकुंभ से अमृत चार स्थानों पर छलक कर गिरा। उसमें से एक स्थान प्रयागराज है। बड़े श्रम और चतुराई से देवताओं ने अमृत कुंभ को प्राप्त किया। बारह वर्षों पर प्रयाग में कुंभ स्नान होता है। छह वर्ष बाद अर्धकुंभ का स्नान होता है। कुंभ के अवसर पर प्रयाग आए तीर्थयात्रियों के लिए उनकी दिनचर्या का भी वर्णन मिलता है।

के बिना पूरी नहीं होती। देवता और दैत्यों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था। समुद्र से चौदह रत्न निकले। समुद्र से अमृतकुंभ भी निकला। उसके लिए देवता और दैत्यों में संघर्ष प्रारंभ हो गया। दैत्य अमृतकुंभ लेकर भागे। देवताओं ने उनका पीछा किया। भागने के प्रयास में अमृतकुंभ से अमृत चार स्थानों पर छलक कर गिरा। उसमें से एक स्थान प्रयागराज है। बड़े श्रम और चतुराई से देवताओं ने अमृतकुंभ को प्राप्त किया। बारह वर्षों पर प्रयाग में कुंभ स्नान होता है। छह वर्ष बाद अर्धकुंभ का स्नान होता है। कुंभ के अवसर पर प्रयाग आए तीर्थयात्रियों के लिए उनकी दिनचर्या का भी वर्णन मिलता है। यात्रा करते समय वाहनों का प्रयोग वर्जित है। तीर्थक्षेत्र में पैदल ही यात्रा करनी चाहिए। प्रयाग में कल्पवास का विशेष महत्त्व है। कुंभ के समय कल्पवास का पुण्य और अधिक होता है। पद्मपुराण और ब्रह्मपुराण में कल्पवास के विषय में बतलया गया है। कल्पवासी के लिए अनेक प्रकार के नियम बतलाए गए हैं। उसे समस्त प्रकार के सांसारिक सुखों से परे जाकर कीर्त्तन और चिंतन में ही मन लगाना चाहिए।

प्रयागराज धार्मिक चेतना के भीतर से सामाजिक जागृति का शंखनाद है। यह त्याग, तपस्या, समर्पण, समरसता, बौद्धिक सजगता तथा उपासना के समभाव की भूमि है। संगम समन्वय के भीतर से गंगा के मूल प्रवाह और नाम का स्मरण है। प्रयाग से आगे का प्रवाह गंगा ही रहता है। भौतिक वैभव के परित्याग और सर्वसमाज की स्वीकार्यता के साथ उसके लिए कर्तव्याभिमुख होकर सर्वस्व त्याग की प्रेरणा का नाम प्रयागराज है। यह आकस्मिक नहीं है कि हर्षवर्धन अपनी संपूर्ण संपत्ति का कुंभ में आमजन के लिए विसर्जन करते हैं। भारतीय वैभव, चिंतन, सांस्कृतिक प्रवाह, सूर्य सी ऊर्जस्विता, बड़े भू-भाग की स्थिरता के लिए किए जाने वाले यत्न का साक्षी और प्रेरक है प्रयागराज। ❑

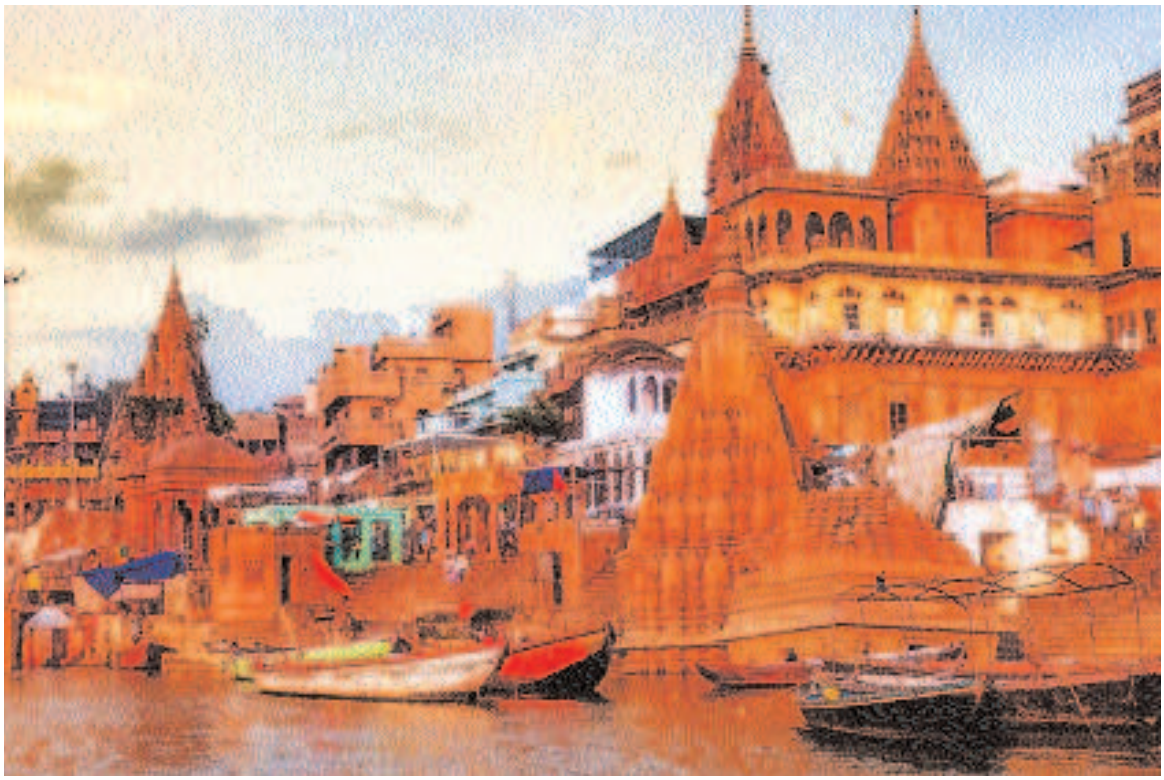

भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता के तीर्थ

डॉ गीता राम शर्मा

सह आचार्य – संस्कृत,
एस. बी. पी. राजकीय
महाविद्यालय ,
डूंगरपुर (राजस्थान)

किसी राष्ट्र की संस्कृति उस राष्ट्र के समग्र आचार विचार की समष्टिगत चेतना होती है। संस्कृति व्यक्तिनिष्ठ न होकर समष्टिगत बौद्धिक अस्तित्व का मूल अधिष्ठान होती है।

तदनुसार मनुष्य मात्र के श्रेष्ठ आदर्श तथा अनुकरणीय आचार विचार संस्कृति की सीमा में समाविष्ट होते हैं। संस्कृति ही मानव जीवन की संवाहिका तथा राष्ट्र की जीवनधारा का मूल स्रोत है। श्री राजगोपालाचारी कहते हैं कि – ''किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के श्रेष्ठ पुरुषों में विचार वाणी एवं क्रिया का जो व्याप रहता है उसी का नाम संस्कृति है। रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति को जीवन के आत्मिक तथा अपरिहार्य गुण के रूप में परिभाषित किया है। तदनुसार– 'संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। यह एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार फूलों में सुगंध और दूध में मक्खन।' संस्कृति का निर्माण सदियों से प्रवाहमान उदात्त संस्कारों के जीवनीय आचरण से होता है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में– 'संस्कृति' का अर्थ है – संस्कार संपन्न जीवन। ये संस्कार कर्म और वचन के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं। किसी देश की संस्कृति उस देश के सर्व साधारण व्यक्तियों के व्यक्तित्व का निर्माण करते हुए उस देश के मूल स्वभाव को व्यक्त करती है। राम जी उपाध्याय के अनुसार– 'संस्कृति वह प्रक्रिया है जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्व निष्पन्न होता है। इस निष्पन्न व्यक्तित्व के द्वारा लोगों को जीवन और जगत के प्रति एक अभिनव दृष्टिकोण मिलता है। इस प्रकार विविधतामयी भौगोलिक संरचनाओं और पर्यावरणीय वैविध्य के बीच विकसित भौतिक जनजीवन, व्यापक हितों से जुड़ी उदात्त परंपराएँ, उनमें समाज हितधारक जीवन मूल्य, पूर्वजों के व्यापक संघर्षों के परिणाम, उनके आचार पूत जीवनानुभव आदि सब मिलकर सांस्कृतिक उपकरण बन जाते हैं। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति के स्वरुप के विषय में चिन्तन का केन्द्रीय भाव यह उभरता है कि भारतीय संस्कृति विशुद्ध सामासिक संस्कृति है। भारत की सम्पूर्ण इच्छा और क्रियाओं के समुच्चय को समग्रता से प्रकाशित करने में भारतीय संस्कृति सक्षम

है। या यों कहें कि संस्कृति ही भारत का स्व और सर्वस्व है। संस्कृति के आलोक में ही भारत का वैयक्तिक और सामुदायिक अभ्युदय प्रामाणिकता के साथ संभावित है। एकता इस संस्कृति का स्वभाव है जिसकी अभिव्यक्ति विविधताओं से होती है। विश्ववरेण्या इस प्राचीनतमा संस्कृति के अनेक आधारभूत गुणों में सर्वाधिक स्पृहणीय गुण सर्वसमावेशी भाव ही है। विविधताएँ भारतीय संस्कृति का गहना हैं और एकता इसकी आत्मा है। संस्कृति की विविधतापूर्ण जीवन प्रणाली में यहाँ की भौगोलिक संरचना बड़ा कारक हैं। देश के उत्तरी छोर पर हिमालय का सुरम्य पर्वतीय प्रदेश है तो दक्षिण में चरण पखारता हिन्द महासागर और दक्षिण के पठार हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी घाट और राजस्थान की मरुभूमि तथा गंगा, यमुना, सिन्धु और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा निर्मित भौगोलिक अवयव भारत की विविधताओं का पोषण करते हैं। विभिन्न भौगोलिक भूभागों में शीत, उष्ण और समशीतोष्ण कटिबंधीय जलवायु, जलवर्षण की विविधता, आदि कारकों ने भारतीयों के जीवन को बहु आयामी और विविधताओं से आपूरित करने में अप्रतिम योगदान दिया है। सामाजिक विविधताओं की दृष्टि से भारतीय समाज विभिन्न वर्ण, जाति, भाषा, पन्थ आदि में विविधतावाही है।

इसी प्रकार भारत लोक-धर्म, जन विश्वास, रीति-रिवाज, रहन-सहन, मत-मतान्तर, भाषा-बोलियों, जातियों और सामाजिक संस्थाओं की दृष्टि से पूरा संग्रहालय कहा जा सकता है। परन्तु यह निष्प्राण चीजों और ईंट पत्थरों का अजायबघर नहीं है अपितु प्राणवान मानव जाति और अपने-अपने ढंग से विकसित हुए विचारों का महान कोश है। लेकिन भारतीय संस्कृति में विविधता 'एकोऽहं बहुस्याम:।' अर्थात् मैं अकेला ब्रह्म ही विविध हो जाता हूँ की तर्ज पर एकता का ही विस्तार है। अर्थात् भारत की सर्वविदित विविधताएँ एकता और अखण्डता के एकमेव सूत्र में दृढ़ता से पिरोयी गयी हैं। विष्णु पुराण में भारत का भौगोलिक स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि - 'भारत वर्ष वह देश है जो हिमालय के दक्षिण और समुद्र के उत्तर में है, जहाँ महेन्द्र, मलय,सह्य, शुक्तिमान, ऋक्ष एवं पारियत्र ये सात पर्वत हैं। यहाँ भारत के वंशज रहते हैं पूर्व में किरात और पश्चिम में यवन बसते हैं और जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के लोग हैं।' हिन्दुओं की एक देश व्यापी स्तुति में मातृभूमि के स्वरूप की कल्पना और पूजा गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी इन सात नदियों के रूप में जो भारत के भिन्न-भिन्न भूभागों को जल से और भारतीयों को राष्ट्र प्रेम के भावों से सिंचित करती हैं-

गंगे च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।।

एक अन्य मातृभूमि वन्दना में भारत को अयोध्या, मथुरा, माया(हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारावती इन मोक्षदायिनी सात पुरियों का देश कहकर वन्दना की गयी है -

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिनी ।।

इन सब का निहितार्थ है कि भारतवर्ष मात्र भौगोलिक संज्ञा नहीं है अपितु जीता जागता राष्ट्र पुरुष है। भारतीय जन जीवन में व्याप्त विश्व बंधुत्व और राष्ट्रीयता की उदात्त भावना यहाँ सांस्कृतिक विरासत के रूप में उपलब्ध है। वस्तुत: यह समृद्ध सांस्कृतिक राष्ट्र है। इसके भौगोलिक वैविध्य को पालते हुए देशभर में फैले भौगोलिक और ऐतिहासिक स्थान पवित्र तीर्थ स्थल के रूप में पूजित होकर भारत को एकात्म राष्ट्र देव बनाने के पूजोपकरण हैं। भारतीय समाज में उत्सव, व्रत, त्योहार, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के उत्स हैं। व्रत उत्सव त्योहार भारतीयों की व्यष्टिगत सत्ता को समष्टिगत ब्रह्माण्ड से जोड़ने के प्रायोगिक आचार हैं । भारत के पर्वत शृंगगिरि, गह्वर, सरसनीरा सरिताओं तथा समुद्रों के तट ही नहीं अपितु दण्डकारण्य तक के भौगोलिक स्थल केवल भौगोलिक स्थल मात्र नहीं अपितु महापुरुषों के तप, त्याग, पुरुषार्थ और और उदात्त जीवन मूल्यों द्वारा प्राणिमात्र के जीवन के योग क्षेम के लिए प्रेरणादीप हैं। देवर्षि, महर्षि, राजर्षि, सिद्ध महापुरुष और भागवतरस प्रेमोन्मत महामानवों के ये साधनास्थल, तप के अक्षय केन्द्र और अमर लीला स्थल ये स्थल राष्ट्र का हृदय हैं, समाज के आदर्श

केन्द्र हैं, शिक्षा और सभ्यता की जन्मभूमि हैं, श्रान्त और क्लान्त जीवन के विश्वासाश्रय हैं, मृत्यु के उस पार भी प्रकाशदाता हैं। सचमुच हमारे तीर्थ स्थल अजस्र प्रवाहमान जीवनीय शक्ति और सामाजिक चेतना के उत्स हैं। ब्रह्म पुराण में कहा गया है कि तीनों लोकों में अपनी पवित्रता और कर्मशीलता के लिए विश्रुत समस्त भारत ही तीर्थ भूमि है –

लोकानां तीर्थत्रयाणामपिमध्यमुदाहृतम्।
जाम्बवन्त भारतवर्षं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।।

(ब्रह्मपुराण)

तीर्थ समग्र राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने के सशक्त माध्यम हैं। तीर्थस्थल विविधताओं से आपूरित परंपराओं, रीति-रिवाजों, भाषाओं, कला कौशल और लोक संस्कृतियों के परस्पर हस्तान्तरण द्वारा 'वयम राष्ट्रे जाग्रयाम: पुरोहिता:' जैसे सांस्कृतिक राष्ट्र के ध्येय की ओर प्रेरित करते रहे हैं। वैदिक वाङ्मय, पौराणिक साहित्य तथा अर्वाचीन भारतीय साहित्य में भारत के पर्वतों, नदियों, झरनों, लता गुल्मों सरोवरों, तथा तपोवनादि में तीर्थभाव का अतिशय गायन न केवल धार्मिक दृष्टि से अपितु प्रबल राष्ट्र प्रेम के जागरण की दृष्टि से भी किया गया है। श्री राधाकुमुद मुखर्जी अपनी पुस्तक 'हिन्दू संस्कृति' में लिखते हैं कि 'यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि तीर्थ स्थलों की यात्रा अंततोगत्वा मातृभूमि के प्रेम की ही अभिव्यक्ति है। मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट करने की भावना ने ही पूरे देश में चारों दिशाओं में तीर्थ स्थानों को जन्म दिया जिससे उनका प्रत्येक भाग पवित्र एवं पूजा योग्य माना जाता है।' भारत की राष्ट्रीय एकता की अवधारणा भी मूल रूप से धार्मिक है। प्रसिद्ध तीर्थस्थल देश के कोने-कोने में हैं। सभी दिशाओं में फैले हुए हिन्दुओं के चारों धाम, सप्तमोक्षदायिनी पुरियाँ, सप्तबद्री, पंचकेदार, सप्त क्षेत्र, सप्त सरोवर, द्वादश ज्योतिर्लिंग, द्वादश अरण्य, चतुर्दश प्रयाग, इक्यावन शक्ति पीठ आदि तीर्थस्थल धर्म केन्द्रों के साथ ही राष्ट्रीय एकता के प्रकृष्ट उपादान भी हैं। पौराणिक साहित्य में गंगादि नदियों एवं उनके किनारे बसे इन तीर्थों के राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने के उद्देश्य का स्पष्ट प्रतिपादन है। धर्म प्रधान राष्ट्रीयता की स्थापना के उद्देश्य से वैदिक संस्कृति के महान और अद्वितीय प्रचारक आदि शंकराचार्य ने वैयक्तिक चरित्र साधना के साथ-साथ भारतवासियों के मन में राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय चरित्र के पल्लवन की दृष्टि से देश की चारों दिशाओं में चारधामों की स्थापना की थी। आदि शंकराचार्य की राष्ट्रीय एकता के प्रति प्रतिबद्धता का ही प्रकृष्ट प्रमाण है कि भारत के ठेठ उत्तरी छोर पर स्थित बद्रीनारायण में पुजारी सुदूर दक्षिण से केरल के नम्बूदरीपाद ब्राह्मण होते हैं, पूजा के लिए केसर कश्मीर से, चन्दन तमिलनाडु से, चना गुजरात से आता है। इसी तरह उत्तर की गंगोत्तरी तीर्थ से गंगाजल लेकर सुदूर दक्षिण में रामेश्वरम् में चढ़ाने की परम्परा है। चार धाम की तीर्थ यात्रा प्रत्येक हिन्दू मन की साध होती है जिसका उद्देश्य न केवल आत्म परिष्कार होता है अपितु समस्त राष्ट्र मेरा घर है, समस्त पूजास्थल मेरे हैं, यह भाव भी जाग्रत होता है। समस्त पूजा स्थलों पर ऊँच नीच, जाति पांति, उत्तर दक्षिण, जैसा कोई विभाजन नहीं अपितु 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत-समरस भारत' जैसे एकात्म भारत की अभिव्यक्ति होती है। एकात्म समर्थ राष्ट्र की सर्वप्रथम संकल्पना वेदों ने की। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक व्याप्त बृहद् भौगौलिक

संस्कृति वह प्रक्रिया है जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्व निष्पन्न होता है। इस निष्पन्न व्यक्तित्व के द्वारा लोगों को जीवन और जगत के प्रति एक अभिनव दृष्टिकोण मिलता है। इस प्रकार विविधतामयी भौगोलिक संरचनाओं और पर्यावरणीय वैविध्य के बीच विकसित भौतिक जनजीवन, व्यापक हितों से जुड़ी उदात्त परंपराएँ उनमें समाज हितधारक जीवन मूल्य, पूर्वजों के व्यापक संघर्षों के परिणाम उनके आचार पूत जीवनानुभव आदि सब मिलकर सांस्कृतिक उपकरण बन जाते हैं। इस दृष्टि से भारतीय संस्कृति के स्वरुप के विषय में चिन्तन का केन्द्रीय भाव यह उभरता है कि भारतीय संस्कृति विशुद्ध सामासिक संस्कृति है।

सीमाओं और जाति, वर्ग, भाषा, वेशभूषा, क्षेत्र, लोक, कला, कौशल, आचार-विचार तथा जीवन प्रणालियों की विविधताओं में राजित राष्ट्र को एक सूत्र में समन्वित करने वाले उपकरणों में तीर्थस्थलों का शीर्षस्थ स्थान है।

तीर्थ स्थल हमारी सांस्कृतिक चेतना के ज्योतिर्मय स्तम्भ हैं। तीर्थों में सांस्कृतिक चेतना सर्वाधिक प्रखर और मुखर रूप में व्यक्त होती है। तीर्थ यात्रा से समष्टि और व्यष्टि का समन्वय होता है तथा 'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवत्' जैसे चारित्रिक ध्येय की व्यावहारिक परिणति होती है। तीर्थों को ईश्वर का भावना शरीर माना जाता है, इसलिए तीर्थाटन से भारतीयों को ईश्वर साक्षात्कार की सी अनुभूति होती है। तीर्थ समता, बन्धुतापूर्ण समरस समाज निर्माण में महनीय उपकारक हैं।

भारत की सांस्कृतिक एकता का सर्व प्रधान आधार आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिक दृष्टि से एक ही चेतन ब्रह्म अखिल दृश्य जगत का कारण है। वस्तुत: सभी प्राणी एक ही शाश्वत चैतन्य के अंश हैं। जितनी नाम, रूप, गुण, क्रियादि की विविधता हैं, वह केवल व्यवहार के लिए हैं। सभी का जन्म एक ही चेतन सत्ता से हुआ है तथा विलय भी एक सत्ता में होता है। ऋग्वेद की ऋचाओं के उन्मेष से लेकर आज तक के भारतीय वाङ्मय में व्याप्त आध्यात्मिक भाव भारत को एकता के लिए प्रेरित करता है। यथा - 'एकं सद्विप्रा: बहुधा वदन्ति (ऋग्वेद), सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छान्दोज्ञ), ईशावास्यमिदं सर्वं (ईशोपनिषद्), जैसी वैदिक मान्यताएँ पदे पदे अनेकता को एकता में परिवर्तित करने की प्रेरणाएँ देती हैं ।] इसी अध्यात्म भाव के कारण 'विश्वभवत्येक नीडम्', वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव पल्लवित हुए तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिन:...'। जैसे सर्व कल्याण के भाव संस्कृति के अनिवार्य अवयव बन सके। इसी आध्यात्मिक भाव के आलोक में भक्त कवियों ने भक्ति के द्वारा सामाजिक समरसता का प्रयत्न किया। कबीर दास कहते हैं कि -

एकै पवन एक ही पानी
एक ही जोति संसारा।
एक ही खाक गढ़े सब भांड़े,
एक ही सिरजन हारा।।

अथवा

जाति पांति पूछहि नहिं कोई।
हरि को भजहि सो हरि को होई। - कबीर

इस अध्यात्म भाव के कारण भारतीय संस्कृति में व्यापक दृष्टिकोण, समन्वय भाव तथा नैतिकता पूर्ण जीवन के प्रति स्वीकार्यता का भाव पोषित हुआ। नैतिकता पूर्ण जीवन व्यवस्था द्वारा समग्र समाज को सम्पूर्णता से धारण करने वाली धारणात्मक शक्ति को ही मनीषियों ने धर्म संज्ञा से अभिहित किया है -

धारणाद्धर्म - इत्याहु धर्मेण धार्यते प्रजा।

प्राणी मात्र के प्रति दया भाव, किसी अलौकिक शक्ति में ईश्वरीय भाव से विश्वास, सभी के प्रति सद्भाव और परस्पर द्वेषादि दुर्विकारों से मुक्त रहते हुए सर्वभूत हित कामना आदि भावों को भारत के सभी मत, पन्थ और धार्मिक सम्प्रदायों ने धर्म के तत्व माना है। सभी मत पन्थों में धार्मिक भाव को व्यक्तित्व विकास और व्यवस्थित समाज रचना का आवश्यक अंग माना है। यथा -

श्रुति स्मृति सदाचार:, स्वस्य च प्रियमात्मन:।
एतच्चतुर्विधं प्राहु: साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्।।

धार्मिक दृष्टि की विविधता के बाबजूद सभी मत पन्थों के मूल तत्वों में एकता और सभी के प्रति आदर भाव भारतीय संस्कृति की दुर्लभ विशेषता है।

वस्तुत: समन्वय भाव इस संस्कृति का मूलाधार है। इसलिए इतनी विविधताओं में भी भावात्मक और क्रियात्मक एकता स्थापन की सामर्थ्य इस संस्कृति में है। ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त में इसी सह जीवन का आह्वान है -

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानानमुपासते ।।
समानि व: आकूति, समानाहृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।।

इसी प्रकार सभी भारतीय भाषाएँ राष्ट्रीय एकता की सशक्त अभिव्यंजक हैं। इसका आधार यह है कि सभी भारतीय भाषाओं का उद्भव और विकास एक ही आनुवंशिक संस्कृत भाषा से हुयी है। सभी भारतीय भाषाएँ विविधतामयी संस्कृति को एकता के सूत्र में बांध सकती हैं। संस्कृत से उद्भूत सभी भारतीय भाषाएँ - 'संस्कृति: संस्कृताश्रिता' की उक्ति को सार्थक करने में सक्षम हैं।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति का समग्र संकल्प और विस्तार स्व से समाज और अहं से वयम् हो जाने का है। यह आकाश की भांति विशाल और सागर की भांति अपार है। भारतीय संस्कृति रूपी सागर में सभी विविधताओं के विश्राम की अद्भुत सामर्थ्य है। ❑

भारत की राष्ट्रीय एकात्मता का आदि प्रतीक : काशी विश्वनाथ मंदिर

डॉ. निर्भय कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

भारत की राष्ट्रीय एकात्मता का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना है, तो हमें भारत के सामाजिक, राजनीतिक और विशेषकर सांस्कृतिक इतिहास का वास्तविक ज्ञान होना भी आवश्यक है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि भारत पर आक्रमण व शासन करने वाले आक्रान्ताओं के समक्ष यदि सबसे बड़ी कोई चुनौती रही है, तो वह है भारत की राष्ट्रीय एकात्मता और इसका सांस्कृतिक-बोध। इस राष्ट्रीय एकात्मता के प्रतीक हैं - भारत के विभिन्न तीर्थ-स्थल एवं उन तीर्थ-स्थलों में स्थित भव्य-दिव्य प्राचीन मंदिर। जो भारत-भूमि के कोने-कोने में विस्तृत हैं। जो भारत के विविधातामयी समाज को एक साथ लाकर खड़ा कर देते हैं। उनके भीतर एक भाव का संचार कर देते हैं। क्या पूरब, क्या पश्चिम, क्या उत्तर, क्या दक्षिण भारत के किसी भी कोने में निवास करने वाला व्यक्ति जब इन तीर्थ स्थलों एवं प्राचीन मंदिरों के संसर्ग में आता है, तब वह अपने सभी राग-द्वेषों से मुक्त होकर एक ही भाव से भर जाता है। वह भाव है- भारत की राष्ट्रीय एकात्मता का भाव जो इसके गौरवशाली सांस्कृतिक-बोध से उत्पन्न होता है। यही कारण है कि विदेशी आक्रांताओं और शासकों ने भारत पर आक्रमण कर सबसे पहले इसकी अभेद्य राष्ट्रीय एकात्मता के भाव व इसके सांस्कृतिक-बोध को खंडित और नष्ट करने का असफल प्रयत्न किया है। यहाँ के तीर्थ-स्थलों और प्राचीन मंदिरों का विध्वंस करने का असफल प्रयत्न किया है जो भारत की राष्ट्रीय एकात्मता एवं इसकी गौरवशाली संस्कृति के प्रतीक हैं। ये प्रतीक भारत के सभी निवासियों को एक साथ जोड़ते हैं। उनके भीतर 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' की परिकल्पना को मूर्त करने की प्रेरणा जाग्रत करते हैं। भारत की राष्ट्रीय एकात्मता के प्रतीकों में ऐसा ही एक आदि-प्रतीक है- प्राचीन काशी नगरी और उस नगरी में अनादि काल से स्थित भव्य-दिव्य काशी विश्वनाथ मंदिर।

माँ गंगा के आँचल में सिंदूरी थाल की तरह सजे मधुमय अरुण के आगमन से उत्पन्न लालिमा से देदीप्यमान हो जाने वाली, भव्य-दिव्य-सी छवि अंकित कर रहस्यमयी प्रकार से आँखों को भा जाने वाली एवं प्रत्येक भारतीय ही नहीं, विदेश से आने वाले पर्यटकों की भी अंतर्आत्मा

को छू लेने वाली काशी, भारत के सबसे प्राचीन और आध्यात्मिक नगरों व तीर्थ-स्थलों में से एक है। काशी विश्वनाथ मंदिर द्वादशज्योर्तिलिंगों में नौवाँ स्थान रखता है। स्कंद पुराण में वर्णित एक कथा के अनुसार यह स्थान भगवान शिव और माता पार्वती का आदि-स्थान है। इसलिए आदिलिंग के रूप में अविमुक्तेश्वर को ही प्रथम लिंग माना गया है। इसका उल्लेख 'महाभारत' और 'उपनिषदों' में भी किया गया है। कहा जाता है कि काशी भगवान शिव के त्रिशूल पर स्थित है। गंगा, वरुणा और अस्सी घाट के मिलन होने से भगवान शिवके इस पावन नगरी का निर्माण हुआ है। धार्मिक ग्रंथों के अनुसार यहाँ लगभग तीस करोड़ देवी-देवताओं का वास है। वैसे तो इस नगरी में अनेक मंदिर, घाट और पर्यटन-स्थल हैं, किंतु काशी विश्वनाथ मंदिर का एक अलग ही महत्त्व है। काशी विश्वनाथ मंदिर बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है। काशी विश्वनाथ मंदिर का हिंदू धर्म में एक विशिष्टि स्थान है। ऐसी मान्यता है कि एक बार इस मंदिर के दर्शन करने और पवित्र गंगा में स्नान कर लेने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

काशी विश्वनाथ मंदिर अनादिकाल से काशी में स्थित है। इतिहासकारों के अनुसार, इस मंदिर का पुनर्निर्माण राजा विक्रमादित्य ने ग्यारहवीं सदी में करवाया था। ईसा पूर्व ग्यारहवीं सदी में राजा हरिश्चन्द्र ने जिस काशी विश्वनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया था, उन्हीं की प्रेरणा से आगे चलकर सम्राट विक्रमादित्य ने उसका पुनर्निर्माण करवाया। अनेक इतिहास की पुस्तकों में इस बात का उल्लेख है कि इस भव्य मंदिर को सन् 1194 में आक्रान्ता मुहम्मद गौरी द्वारा तोड़ा गया था। इसे लूटने के पश्चात् मुहम्मद गौरी ने सैनिकों के बल पर इसके विध्वंस का आदेश दिया था। क्योंकि वह भारत की राष्ट्रीय एकात्मता व इसकी संस्कृति को नष्ट करना चाहता था। किंतु उसका यह प्रयास विफल रहा। यह मंदिर पुनः निर्मित हो गया। सन् 1447 में इसे जौनपुर के सुल्तान महमूद शाह द्वारा तोड़ा गया। डॉ. ए.एस. भट्ट ने अपनी पुस्तक 'दान हारावली' में इस बात का उल्लेख किया है कि सुल्तान महमूद शाह द्वारा किए गए इस मंदिर विध्वंस के पश्चात् सन् 1585 ई. में राजा टोडरमल की सहायता से पंडित नारायण भट्ट द्वारा पुनः इस स्थान पर एक भव्य मंदिर का निर्माण किया गया। इस भव्य मंदिर को सन 1632 में शाहजहाँ ने भी आदेश पारित कर तोड़ने के लिए सेना भेज दी। सेना हिन्दुओं के प्रबल प्रतिरोध के कारण काशी विश्वनाथ मंदिर के केंद्रीय ढाँचे को तो तोड़ नहीं सकी, किंतु काशी के अन्य 63 मंदिर सैनिकों द्वारा तोड़ दिए गए।

इसके पश्चात् 18 अप्रैल,1669 को औरंगजेब ने भी एक फरमान जारी कर काशी विश्वनाथ मंदिर को ध्वस्त करने का आदेश दिया था। यह फरमान एशियाटिक लाइब्रेरी, कोलकत्ता में आज भी सुरक्षित है। उस समय के लेखक साकी मुस्तईद खाँ द्वारा लिखित 'मासीदे आलमगिरी' में इस ध्वंस का वर्णन है। औरंगजेब के ही आदेश पर यहाँ का मंदिर तोड़कर एक ज्ञानवापी मस्जिद बनाई गई थी। सैनिकों द्वारा 02 सितम्बर, 1669 को औरंगजेब को मंदिर तोड़ने एवं मस्जिद निर्माण का कार्य पूर्ण होने की सूचना दी गई थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सन् 1669 में औरंगजेब ने काशी विश्वनाथ मंदिर को तोड़कर ही वहाँ ज्ञानवापी मस्जिद बनाई थी। किंतु भारत की राष्ट्रीय एकात्मता के भाव से ओत-प्रोत भारत के महान एवं वीर योद्धाओं द्वारा औरंगजेब को भी चुनौतिओं व प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा था। काशी विश्वनाथ मंदिर के विध्वंस का समाचार मिलते ही वीर योद्धा शिवाजी ने औरंगजेब को चेतावनी भरा एवं काशी विश्वनाथ सहित अन्य धर्मस्थानों को मुक्त करने का संकल्प व्यक्त करने वाला पत्र लिखकर उसे उसके कुकृत्यों के प्रति सचेत किया था। छत्रपति शिवाजी अपने मराठा सरदारों व अन्य मंत्रियों के साथ धर्मस्थान मुक्ति की चर्चा निरंतर किया करते थे और उसके लिए सदैव प्रयत्नशील भी थे। इसी का परिणाम था कि स्वयं छत्रपति शिवाजी महाराज ने भारत के अनेक मंदिरों का पुर्ननिर्माण करवाया।

इतिहास की उपर्युक्त पुस्तकों में इस बात का उल्लेख भी मिलता है कि औरंगजेब ने प्रतिदिन हजारों ब्राह्मणों को मुसलमान बनाने का आदेश भी पारित किया था। वास्तविकता यह है कि आज के उत्तर प्रदेश के 90 प्रतिशत मुसलमानों के पूर्वज ब्राह्मण हैं। किंतु वामपंथी और मुख्यधारा के इतिहासकारों ने इस भयंकर त्रासदी को सुनियोजित तरीके से इतिहास से गायब कर दिया है। आगे चलकर सन् 1752 से लेकर सन् 1780 के बीच मराठा सरदार दत्ताजी सिंधिया व मल्हारराव होलकर के द्वारा मंदिर-मुक्ति का प्रयास किया गया। इसी प्रयास के परिणामस्वरूप 07 अगस्त, 1770 ई. में महादजी सिंधिया

भारत-भूमि अनादिकाल से ही ज्ञान, अध्यात्म, कला एवं विज्ञान तथा विश्व की महानतम संस्कृतियों में न केवल सर्वोपरि रही है, अपितु अनेक संस्कृतियों की जननी भी है। इस वसुंधरा ने सदियों से मानव-समाज को मानवीय मूल्यों का पाठ पढ़ाया है और उसका मार्गदर्शन करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का आरोपण किया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा के साथ ही भारत ने संपूर्ण विश्व को शांति, सद्भाव व जन-कल्याण का मंत्र दिया है। भारतीय संस्कृति और इसके राष्ट्रीय एकात्मता का मूल भाव इतना विस्तृत और व्यापक है कि उसकी राह में आने वाली तमाम बाधाएँ इसमें ही समा गई हैं।

ने दिल्ली के बादशाह शाह आलम से मंदिर तोड़ने की क्षतिपूर्ति वसूल करने का आदेश पारित करा लिया था, किंतु विडंबना यह रही कि तब तक काशी पर ईस्ट इंडिया कंपनी का राज स्थापित हो गया था। यही कारण है कि काशी विश्वनाथ मंदिर का नवीनीकरण का कार्य एक बार पुनः बाधित हो गया। पुनः सन् 1777 से 1780 के बीच इंदौर की महारानी अहिल्याबाई द्वारा इस मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया गया। अहिल्याबाई होलकर ने इसी परिसर में काशी विश्वनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण करवाया जहाँ उसका मूल ढाँचा स्थापित था। पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने इस ढाँचे के मूल स्थान पर सोने का छत्र बनवाया। ग्वालियर की महारानी बैजाबाई ने ज्ञानवापी का मंडप बनवाया एवं महाराजा नेपाल ने वहाँ विशाल नंदी प्रतिमा स्थापित करवाई। सन् 1809 ई. में काशी के हिन्दुओं ने अवैध तरीके से निर्मित की गई इस ज्ञानवापी मस्जिद पर अधिकार कर लिया।

वास्तविकता यह है कि यह संपूर्ण क्षेत्र ज्ञानवापी मंडप का क्षेत्र है जिसे आजकल ज्ञानवापी मस्जिद कहा जाता है। 30 दिसंबर, 1810 को वाराणसी के तत्कालीन जिला दंडाधिकारी मिस्टर वाट्सन ने 'वाईस प्रेसिडेंट इन काउंसिल' को एक पत्र लिखकर यह ज्ञानवापी परिसर हिन्दुओं को सदैव के लिए समर्पित करने का प्रस्ताव रखा था, किंतु यह शुभ कार्य आज तक संभव नहीं हो सका है। इन सभी तथ्यों के अतिरिक्त इतिहास की अनेक पुस्तकों में ग्यारहवीं से पंद्रहवीं सदी के कालखंड के दौरानकाशी विश्वनाथ के साथ-साथ भारत के अनेक मंदिरों का उल्लेख एवं उनके विध्वंस की बातें सामने आती हैं। जैसे मोहम्मद तुगलक (1325) के समकालीन लेखक जिनप्रभ सूरी ने अपनी पुस्तक 'विविध कल्प तीर्थ' में लिखा है कि बाबा विश्वनाथ को देव क्षेत्र कहा जाता था। लेखक फ्युरर ने भी लिखा है कि फिरोजशाह तुगलक के समय भारत के कुछ मंदिरोंको मस्जिदों में बदलागया था। सन् 1460 ई. में वाचस्पति ने भी अपनी पुस्तक 'तीर्थ चिंतामणि' में वर्णन किया है कि अविमुक्तेश्वर और विशेश्वर एक ही लिंग है।

'यक्षस्वरूपाय जटाधराय
पिनाकहस्ताय सनातनाय
दिव्याय देवाय दिगम्बराय-
तस्मै यकाराय नमः शिवाय।।
ऊँ नमः शिवाय।।

यह सर्वविदित है कि भारत-भूमि अनादिकाल से ही ज्ञान, अध्यात्म, कला एवं विज्ञान तथा विश्व की महानतम संस्कृतियों में न केवल सर्वोपरि रही है, अपितु अनेक संस्कृतियों की जननी भी है। इस वसुंधरा ने सदियों से मानव-समाज को मानवीय मूल्यों का पाठ पढ़ाया है और उसका मार्गदर्शन करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का आरोपण किया है।'वसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा के साथ ही भारत ने संपूर्ण विश्व को शांति, सद्भाव व जन-कल्याण का मंत्र दिया है। भारतीय संस्कृति और इसके राष्ट्रीय एकात्मता का मूल भाव इतना विस्तृत और व्यापक है कि उसकी राह में आने वाली तमाम बाधाएँ इसमें ही समा गई हैं। हमें इन प्रश्नों पर विचार करना होगा कि आखिर क्या कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक जितने भी आक्रान्ता भारत पर शासन करने आए उन्होंने सबसे पहले प्रमुखता से यहाँ के तीर्थ-स्थलों और मंदिरों को ही क्यों निशाना बनाया? हमें यह भी विचार करना होगा कि बारंबार आक्रमण करने और तीर्थ-स्थलों व मंदिरों का ध्वंस करने के बावजूद भी वे क्यों असफल रहे? हमें विचार करना होगा कि आखिर क्या कारण है कि इन सबके बावजूद भी वे भारत पर स्थाई रूप से शासन नहीं कर सके?

ऐसे तमाम प्रश्नों के उत्तर हमें हमारे तीर्थ-स्थलों व यहाँ के प्राचीन मंदिरों के सांस्कृतिक व ऐतिहासिक अध्ययन से मिलेंगे। हमारे तीर्थ-स्थल व यहाँ के प्राचीन मंदिर वास्तव में भारत की राष्ट्रीय एकात्मता के प्रतीक हैं। हमारे सांस्कृतिक-बोध के परिचायक है। ईश्वर और भारत माता के प्रति हमारी अगाध व अटूट आस्था व विश्वास के प्रतीक हैं। आततायियों ने हमारे तीर्थ-स्थलों व प्राचीन मंदिरों को तोड़कर हमारी राष्ट्रीय एकात्मता को तोड़ने का प्रयास किया। हमारे सांस्कृतिक-बोध को कलुषित करने का प्रयास किया। भारत-भूमि के प्रति हमारी अगाध व अटूट आस्था व विश्वास को खंडित करने का प्रयास किया। किंतु सुखद संयोग यह है कि वे बारंबार विफल रहे। जिस भारत की राष्ट्रीय एकात्मता के भाव भारत माँ के प्रत्येक सपूत के हृदय में स्थाई भाव के रूप में प्रतिष्ठित हों, उन भावों को भला कौन कलुषित कर सकता है। काशी विश्वनाथ मंदिर एक ऐसा ही आदि-प्रतीक है भारत की राष्ट्रीय एकात्मता का। भारत के गौरवशाली संस्कृति का। आततायियों पर महाकाल के महा-तांडव का। महाकाल के इस नगरी और भारत-भूमि का विध्वंस न कभी कोई आसुरी शक्ति कर पायी है और न ही कभी कर पाएगी।

आज श्रीकाशी विश्वनाथ धाम धर्म के साथ-साथ पुनः एक बार राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय एकात्मता का प्रतीक बन गया है। गंगा के तट और बाबा विश्वनाथ के मंदिर के मध्य में स्थित भारत माता की मूर्ति राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गई है। यह दुनिया में काशी को एक नई पहचान है। श्री काशी विश्वनाथ धाम में रानी अहिल्याबाई, भारत माता, कार्तिकेय, आदि शंकराचार्य की मूर्तियाँ भी स्थापित हुई हैं। विश्वनाथधाम के विकास, विस्तारीकरण व सौंदर्यीकरण से भारत ही नहीं, विश्व समुदाय के लोगों के लिए बाबा के दर्शन सुगम और सरल हो गए हैं। काशी में बाबा विश्वनाथ व माँ गंगा एक बार फिर से एकाकार हो गए हैं। धर्म और राष्ट्रीयता का एक साथ पूरे विश्व में पताका फैलने लगा है। ❑

पुण्यतीर्थ गंगासागर एक छोटे से भारत की तलाश में

सौमक पोद्दार
राज्य कार्यकारिणी समिति,
भारतीय इतिहास संकलन
समिति, पश्चिम बंगाल

गंगासागर संगम भारतीय वैदिक संस्कृति और साहित्य में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तीर्थ है। अनादि काल से आध्यात्मिक पथ के भक्त, ऋषि-मुनियों ने गंगा तट की शरण ली है और अपनी परम सिद्धि को प्राप्त किया है। गंगा के दोनों किनारों पर अनगिनत मठ, मंदिर, तीर्थ और तीर्थ स्थल बन गए हैं यज्ञ-यज्ञ, शास्त्रपथ, दान, तपस्या, जप, श्रद्धाकृत्य, देवता पूजन सभी गंगा तट पर किए जाते हैं इसलिए, गंगा की पवित्रता से आकर्षित होकर, संतों ने गंगा के पवित्र तटों में शरण ली। गंगासागर संगम महर्षि कपिल देव की साधना का चरण है। यह प्रसिद्ध तीर्थ स्थल साधु-संतों का महान तीर्थ स्थल है। बंगाल की भौगोलिक सीमा के दक्षिणी छोर पर नदियों और समुद्रों के संगम को गंगा और समुद्र के संगम के रूप में जाना जाता है।

यहीं पर कपिल देव के ध्यान की दहाड़ से सगर राज के 80,000 बच्चे जल कर राख हो गए थे कपिल मुनि ने सगर के बच्चों की तलाश में आए अंशुमान से कहा कि वे तभी मुक्त हो सकते हैं जब पवित्र गंगा देवी आकर उनका अभिषेक करें। तब सगरराज, अंशुमन, दिलीप ने बहुत तपस्या की और गंगा को ऊपरी दुनिया से कपिलदेव के आश्रम के पास समुद्र के किनारे ले आए त्रिलोकपावनी माता गंगा देवी ने तब जले हुए समुद्र के बच्चों को पवित्र जल से दिव्य गति दी पवित्र गंगा जल के स्पर्श से सागर के बच्चे मुक्त हो गए यह विशाल रेतीले समुद्र तट, पास के हरे भरे जंगल, असीम सुंदरता से सजी भूमि के साथ गंगा का संगम है।

गंगासागर संगम महातीर्थ एक बार या एक दिन के लिए नहीं है, गंगासागर संगम हमेशा महातीर्थ है। क्योंकि गंगासागर महातीर्थ की महिमा अनंत, अवर्णनीय और अथाह है। स्कंद पुराण में है- जो फल मनुष्य को सभी तीर्थ दर्शन, दान, तपस्या, भक्ति पूजा, यज्ञ में मिलता है, वह गंगा के संगम में स्नान करने से ही मिलता है - पद्म पुराण है - कलियुग में आश्रय पाने वाली एकमात्र गंगा - ''कलौ गङ्गा समाश्रयेत्।'' यहाँ तक कि जो शारीरिक रूप से गंगा स्नान करने में असमर्थ हैं वे

भी- ''मुच्यते सभी पापी विष्णुलोकोंग सा गचति।'' अर्थात् यदि कोई सौ योजन (600 मील) दूर भक्तिभाव से बैठता है- उसे 'गंगा गंगा' कहकर, सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर, वह भगवान विष्णु के लोगों के पास भी जाता है।

गंगासागर मेले का मुख्य आकर्षण श्रीकपिल देव का मंदिर है। मंदिर में कपिल देव कमल की मुद्रा में विराजमान हैं उनके बाएँ हाथ में कमंडुल, उनके दाहिने हाथ में जपमाला, सिर पर पंचनाग छत्रबत स्थित है। श्रीकापिल देवी के दक्षिण में श्री गंगादेवी की मूर्ति है। ये चतुर्भुज और मकर राशि के वाहन हैं। श्रीहस्तों में शंख, कमल, अमृतकुंभ और बरवाय सामने महतपस भगीरथ कपिल देव की मूर्ति के बायीं ओर कर युगल में सागर राज भक्ति नम्रता से खड़ी है।

मकर राशि के 10 जनवरी को लाखों की संख्या में श्रद्धालु गंगा संगम में स्नान करेंगे। उस दिन गंगा में गंगास्नान, गंगापूजो, तर्पणदि का आयोजन अत्यंत श्रद्धा के साथ किया जाएगा गंगा में स्नान के लिए एक विशेष मंत्र, अर्थात् देव सरितां नाथ त्वं देवी सरिताम्बरे उभयो:

सङ्गमे स्नात्वा मुंचामि दुरितानि वै।

इस मंत्र का जाप कर स्नान करना अनिवार्य है। स्नान के अंत में दान अत्यावश्यक है।

त्रिलोक पाबनी गंगा देवी दुनिया को बचाने के लिए इस दुनिया में आईं। इसलिए हम मकर संक्रांति स्नान पर्व के दिन इस महान तीर्थ गंगासागर के संगम में त्रिलोक जननी गंगा देवी के चरणों में प्रार्थना करते हैं। 'हे माँ गंगा! आपने भारत भूमि में देवी बसुंधरा को सुजला-सुफला-शस्य-श्यामला जैसे प्राकृतिक संसाधनों से नवाजा है।'

संस्कारित समुद्र ने बच्चों को परम कल्याण प्रदान किया है, उसी तरह- 'हे शांतिदूत! हे प्राणततिहारिणी जगनमाता!' अपनी लहरों से आने वाली कोमल हवा को दु:ख में अपमानित, त्रितप में जले हुए, दर्द में चिल्लाते हुए जीवों की ओर प्रवाहित करके उनकी लहरों से गर्म हृदय में शीतल शांति के स्पर्श के साथ परम कल्याण प्रदान करें। ❑

राजस्थान का जलियांवाला बाग 'मानगढ़ स्वतंत्रता आंदोलन' एवं प्रणेता पूज्य गोविंद गुरु

डॉ. प्रमोद कुमार वैष्णव
सह आचार्य संस्कृत,
हरिदेव जोशी राजकीय
कन्या महाविद्यालय,
बांसवाड़ा (राज.)

राजस्थान के सुदूर दक्षिण भाग में स्थित माही गंगा के पवित्र जल से सिंचित वागड़ अंचल अपनी ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं जनजाति परंपराओं के कारण भारतवर्ष में अपनी विशिष्ट पहचान रखता है । यह क्षेत्र भक्ति एवं शक्ति का केंद्र है। बेणेश्वर मेला, घोटिया आंबा मेला, मानगढ़ धाम मेला एवं अरथुना मेला भक्ति एवं संस्कृति के संवाहक स्थल हैं। संत मावजी, मामा बालेश्वर दयाल एवं संत गोविंद गुरु ने अपनी वाणियों, उपदेशों, भजनों के द्वारा जनजातीय समाज की सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों को अंत कर उन्हें सद् मार्ग दिखाया है। ऐसे ही युगदृष्टा, जननायक क्रांतिकारी संत हैं पूज्य श्री गोविंद गुरु।

गोविन्द गुरु का जन्म 20 दिसम्बर, 1858 को डूंगरपुर जिले के बांसिया (बेड़िया) गाँव में गोवारिया जाति के एक बंजारा परिवार में हुआ था। बचपन से उनकी रुचि शिक्षा के साथ अध्यात्म में भी थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा से उन्होंने अपना जीवन देश, धर्म और समाज की सेवा में समर्पित कर दिया। उन्होंने अपनी गतिविधियों का केन्द्र वागड़ क्षेत्र को बनाया।

उन्होंने न तो किसी स्कूल-कॉलेज में शिक्षा ली थी और न ही किसी सैन्य संस्थान में प्रशिक्षण पाया था। अंग्रेजी हुकूमत के दिनों जब भारत की आजादी में हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से योगदान दे रहा था तब अशिक्षा और अभावों के बीच अज्ञान के अंधकार में जैसे-तैसे जीवनयापन करते आदिवासी अंचल के निवासियों को धार्मिक चेतना की चिंगारी से आजादी की अलख जगाने का काम गोविंद गुरु ने किया। वे ढोल-मंजीरों की ताल और भजन की स्वर लहरियों से आम जनमानस को आजादी के लिए उद्वेलित करते थे।

गोविंद गुरु ने भगत आंदोलन 1890 के दशक में शुरू किया था। आंदोलन में अग्नि देवता को प्रतीक माना गया था। अनुयायियों को पवित्र अग्नि के समक्ष खड़े होकर पूजा के साथ-साथ हवन (अर्थात् धूनी) करना होता था। 1883 में उन्होंने 'सम्प सभा' की स्थापना की। इसके द्वारा उन्होंने शराब, मांस, चोरी, व्यभिचार आदि से दूर रहने; परिश्रम कर सादा जीवन जीने; प्रतिदिन स्नान, यज्ञ एवं कीर्तन करने; विद्यालय स्थापित कर बच्चों को पढ़ाने, अपने झगड़े पंचायत में सुलझाने, अन्याय न सहने, अंग्रेजों के पिट्ठू जागीरदारों को लगान न देने, बेगार न करने तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी का प्रयोग करने जैसे सूत्रों का गाँव-गाँव में प्रचार किया।

कुछ ही समय में लाखों लोग उनके भक्त बन गये। प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष पूर्णिमा को सभा का वार्षिक मेला होता था, जिसमें लोग हवन करते हुए घी एवं नारियल की आहुति देते थे। लोग हाथ में घी के बर्तन तथा कन्धे पर अपने परम्परागत शस्त्र लेकर आते थे। मेले में सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं की चर्चा भी होती थी। इससे वागड़ का यह आदिवासी क्षेत्र धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकार तथा स्थानीय सामन्तों के विरोध की आग में सुलगने लगा।

17 नवम्बर, 1913 (मार्गशीर्ष पूर्णिमा) को मानगढ़ की पहाड़ी पर वार्षिक मेला होने वाला था। इससे पूर्व गोविन्द गुरु ने शासन को पत्र द्वारा अकाल से पीड़ित आदिवासियों से खेती पर

लिया जा रहा कर घटाने, धार्मिक परम्पराओं का पालन करने देने तथा बेगार के नाम पर उन्हें परेशान न करने का आग्रह किया था; पर प्रशासन ने पहाड़ी को घेरकर मशीनगन और तोपें लगा दीं। इसके बाद उन्होंने गोविन्द गुरु को तुरन्त मानगढ़ पहाड़ी छोड़ने का आदेश दिया। उस समय तक वहाँ लाखों भगत आ चुके थे। पुलिस ने कर्नल शटन के नेतृत्व में गोलीवर्षा प्रारम्भ कर दी, जिससे हजारों लोग मारे गये। इनकी संख्या 1,500 तक कही गयी है।

पुलिस ने गोविन्द गुरु को गिरफ्तार कर पहले फाँसी और फिर आजीवन कारावास की सजा दी। 1923 में जेल से मुक्त होकर वे भील सेवा सदन, झालोद के माध्यम से लोक सेवा के विभिन्न कार्य करते रहे। 30 अक्टूबर, 1931 को ग्राम कम्बोई (गुजरात) में उनका देहान्त हुआ। प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष पूर्णिमा को वहाँ बनी उनकी समाधि पर आकर लाखों लोग उन्हें श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं।

गोविन्द गुरु ने अपने सन्देश को लोगों तक पहुँचाने के लिए साहित्य का सृजन भी किया। वे लोगों को गीत सुनाते थे। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित पंक्तियों में गोविन्द गुरु अंग्रेजों से देश की जमीन का हिसाब मांग रहे हैं और बता रहे हैं कि सारा देश हमारा है। हम लड़कर अपनी माटी को अंग्रेजों से मुक्त करा लेंगे।

तालोद मारी थाली है, गोदरा में मारी कोड़ी है (बजाने की)

अंग्रेजिया नई मानू नई मानूं
अमदाबाद मारो जाजेम है -2
कांकरिये मारो तंबू हे
अंग्रेजिया नई मानू नई मानूं
... धोलागढ़ मारो ढोल है,
चित्तोड़ मारी सोरी (अधिकार क्षेत्र) है।
आबू में मारो तोरण है,
वेणेश्वर मारो मेरो है।
अंग्रेजिया नई मानू, नई मानूं
दिल्ली में मारो कलम है,
वेणेश्वर में मारो चोपड़ो है,
अंग्रेजिया नई मानू, नई मानूं
हरि ना शरणा में गुरु गोविंद बोल्या
जांबू (देश) में जामलो (जनसमूह) जागे है, अंग्रेजिया नई मानू, नई मानूं।।

गोविंद गुरु अंग्रेजों की नीतियों को खूब समझते थे और उन्हें वे 'भूरिया' कहते थे। वे इस बारे में लोगों को यह गीत गाकर बताते थे -

दिल्ली रे दक्कण नू भूरिया, आवे है महराज।

स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर संविधान निर्माण तक की प्रक्रिया में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय व इसके शिक्षाविदों की भूमिका भी अतुल्यनीय एवं महत्त्वपूर्ण रही है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय को क्रांतिकारियों का गढ़ माना जाता था। स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े अनेक क्रान्तिकारी किसी न किसी रूप में बनारस हिन्दू विश्वविघालय से जुड़े हुए थे। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अनेक शिक्षाविदों ने क्रांतिकारी की भूमिका निभाते हुए न केवल भारत की स्वतंत्रता को सुनिश्चित किया है, अपितु संविधान निर्माण की प्रक्रिया को पूर्ण करते हुए स्वतंत्र भारत के भविष्य को भी संवारा है।

बाड़े घुडिले भूरिया आवे है महराज।।
साईं रे भूरिया आवे है महराज।
डांटा रे टोपीनु भूरिया आवे हैं महराज।।
मगरे झंडो नेके आवे है महराज।
नवो-नवो कानून काढे है महराज।।
दुनिया के लेके लिए आवे है महराज।
जमीं नु लेके लिए है महराज।।
दुनिया नु राजते करे है महराज।
दिल्ली ने वारु बास्सा वाजे है महराज।।
धूरिया जातू रे थारे देश।
भूरिया ते मारा देश नू राज है महराज।।

वैसे कहने को तो यह एक भजन है और 'राजा है महाराज' जैसे टेक के होने के कारण यह समूह गीत की तरह गाया जाता था। परन्तु यह भजन कम, राजनीतिक ककहरा ज्यादा है, जिसे स्कूल के मास्टर की तरह गोविंद गुरु सभी को रटाते थे। खास बात यह कि वे व्यापक एकता चाहते थे और इस कारण वे राजस्थानी हिंदी का उपयोग करते थे। वे जानते थे कि उनके सांस्कृतिक संदर्भ में यही (हिंदी) भाषा जनांदोलन की भाषा हो सकती है।

क्रांतिकारी संत गोविंद गुरु के बड़े बेटे हरिगिरि का परिवार बांसिया में छोटे बेटे अमरूगिरि का परिवार बांसवाड़ा जिले के तलवाड़ा के पास उमराई में बसा है। गोविंद गुरु के जन्म स्थान बांसिया में निवासरत परिवार की छठी पीढ़ी उनकी विरासत को संभाले हुए है। गोविंद गुरु के पुत्र हरिगिरि, उनके बेटे मानगिरि, उनके बेटे करणगिरि, उनके बेटे नरेंद्र गिरि और छठी पीढ़ी में उनके बेटे गोपालगिरि मड़ी मगरी पर रहकर गुरु के उपदेशों को जीवन में उतारने का संकल्प प्रचारित कर रहे हैं।

मानगढ़ स्वतंत्रता आंदोलन : राजस्थान का 'जलियांवाला बाग' -

मानगढ़, राजस्थान में बांसवाड़ा जिले का एक पहाड़ी क्षेत्र है। यहाँ मध्यप्रदेश और गुजरात की सीमाएँ भी लगती हैं। यह सारा क्षेत्र वनवासी बहुल है। मुख्यत: यहाँ महाराणा प्रताप के सेनानी अर्थात् भील जनजाति के हिन्दू रहते हैं। स्थानीय

सामन्त, रजवाड़े तथा अंग्रेज इनकी अशिक्षा, सरलता तथा गरीबी का लाभ उठाकर इनका शोषण करते थे। इनमें फैली कुरीतियों तथा अंध परम्पराओं को मिटाने के लिए गोविन्द गुरु के नेतृत्व में एक बड़ा सामाजिक एवं आध्यात्मिक आंदोलन हुआ जिसे 'भगत आन्दोलन' कहते हैं।

मानगढ़ में एक धूणी है, गोविंद गुरु की प्रतिमा और मानगढ़ से संबंधित जानकारी पत्थरों पर लिखी हुई हैं। डूंगरपुर जिले के बांसिया (वेड़सा) गाँव के बंजारा परिवार में जन्मे गोविंद गुरु ने 1880 में लोगों को जागरूक करने के लिए आंदोलन चलाया।

मानगढ़ धाम पर प्रतिष्ठित शहीद स्मारक एवं गोविंद गुरु की आदम कद प्रतिमा

उन दिनों स्थानीय लोग अंग्रेजी शासकों और देसी रियासतों के टैक्स, बेगारी प्रथा समेत कई अत्याचारों से जूझ रहे थे। इतिहासकार और रिटायर्ड प्रोफेसर बी.के. शर्मा कहते हैं, 'ज़बरन टैक्स लगाए जा रहे थे, लोगों के साथ अछूतों जैसा बर्ताव किया जा रहा था। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में गोविंद गुरु के आंदोलन से एक नई चेतना का उदय हो रहा था।'

गोविंद गुरु ने लोगों को समझाया कि धूणी में पूजा करें, शराब-मास नहीं खाएँ, स्वच्छ रहें। उनके आंदोलन से चोरी तक की घटनाएँ भी बंद हो गई थीं और शराब का राजस्व घट गया था।

'धूणीं तपे तीर' के लेखक और पूर्व आईपीएस अधिकारी हरिराम मीणा कहते हैं, ''साल 1903 में गोविंद गुरु ने संप सभा की स्थापना की। उनकी मुहिम को भगत आंदोलन भी कहा जाता है। जनजागृति का ये आंदोलन बढ़ता गया। देसी रियासतों को लगा कि गोविंद गुरु के नेतृत्व में आदिवासी अलग स्टेट की मांग कर रहे हैं।''

इतिहासकार और रिटार्यड प्रोफेसर वी.के.वशिष्ठ भी मानते हैं कि भील राज स्थापित करना चाहते थे। इस दौरान रियासतों ने अंग्रेजी सरकार से कहा कि ये आदिवासी अपना राज स्थापित करना चाहते हैं। इसी वजह से यहाँ शराब की बिक्री कम हो गई है। गोविंद गुरु के आंदोलन का प्रभाव इतना बढ़ गया था कि देसी रियासतों ने अंग्रेजी सरकार से इनके आंदोलन की शिकायत शुरू कर दी। यहीं से हालात बदले और कुछ सालों बाद 17 नवंबर 1913 को मानगढ़ की पहाड़ी पर नरसंहार हुआ।

गोविंद गुरु का जनजागृति आंदोलन अब चरम पर था। मानगढ़ पर यज्ञ के लिए लोगों का कई दिन से आना जारी था। राष्ट्रीय अभिलेखागार से प्राप्त तत्कालीन पत्र भी बताते हैं कि अंग्रेजी सरकार ने 13 और 15 नवंबर को गोविंद गुरु से मानगढ़ पहाड़ी ख़ाली करने के लिए कहा था। गोविंद गुरु ने यहाँ यज्ञ के लिए लोगों के जुटने की बात कही थी।

प्रोफेसर अरुण वघेला बताते हैं, ''गुजरात के कुंड़ा, बांसवाड़ा के भुखिया वर्तमान आनंदपुरी और मोर्चा वाली घाटी की ओर से मानगढ़ को फौज ने घेर लिया था। इस ऑपरेशन में अंग्रेजों की सेना के साथ ही बांसवाड़ा, डूंगरपुर, बरोड़ा, जोगरबारिया, गायकवाड़ रियासतों की फौज और मेवाड़ भील कोर की कंपनी भी थी।''

फौज ने पहाड़ी का नक्शा बनाया था और खच्चरों से मशीनगन और तोप मानगढ़ पहाड़ी पर पहुँचाईं थीं। मेजर हैमिल्टन (शटन) और उनके तीन अफसरों ने सुबह 6.30 बजे हथियारबंद फौज के साथ मानगढ़ पहाड़ी को तीन ओर से घेर लिया था। सुबह आठ बज कर दस मिनट पर शुरू हुई गोलीबारी 10 बजे तक चली।

मानगढ़ पर गुजरात सीमा में कुंडा गाँव के निवासी पारगी मंदिर में पूजा पाठ करते हैं वह बताते हैं, ''गोलीबारी तब रोकी

गई, जब अंग्रेज अफसर ने देखा कि एक मृत महिला से लिपट कर उसका बच्चा स्तनपान कर रहा है।''

संग्रहालय के बाहर मानगढ़ नरसंहार को प्रदर्शित करती रीलिफ कलाकृति

घटना के बाद अंग्रेज अधिकारी सरकार को मृतकों की सही संख्या नहीं बताते हैं पर ये जानकारी देते हैं कि ''मानगढ़ पहाड़ी को खाली करा लिया है। आठ लोग घायल हुए हैं। 900 लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया।''

घटना के बाद गोविंद गुरु और शिष्य पूंजा पारगी को सजा दी गई। बाद में गोविंद गुरु को मौत से उम्रकैद और बाद में बांसवाड़ा, संतरामपुर और मानगढ़ नहीं जाने की पाबंदी के साथ रिहा कर दिया गया। इस तरह आदिवासियों के आंदोलन को नरसंहार में बदल कर कुचल दिया गया।

फांसी की सजा से उम्रकैद और फिर सशर्त रिहाई के बाद दाहोद में 1921 में गोविंद गुरु की मृत्यु हो गई। आज भी अनेक धूणियाँ हैं और गोविंद गुरु की आज भी पूजा की जाती है। 17 नवंबर को हुए नरसंहार के बाद करीब 80 के दशक तक मानगढ़ पर किसी के भी आने-जाने पर पाबंदी रही।

इतिहासकार अरुण वाघेला कहते हैं, ''लोग इस घटना के बाद खौफ में थे। इसलिए आसपास के इलाके के लोग भी अपने गाँवों को छोड़ अन्य जगह चले गए।''

भगवा रंग के कपड़े पहने हुए मानगढ़ के महंत रामचंद्र गिरि कहते हैं, ''मानगढ़ हत्याकांड में अंग्रेजों ने जो गोलियाँ चलाई थीं, उसमें मेरे दादा हाला और दादी आमरी की मौत हुई थी। वे बावरी के रहने वाले थे। यहाँ 1500 से अधिक लोग शहीद हुए, यहीं लोगों की लाशें पड़ी रहीं और यहीं सड़ गईं।''

बीते कुछ साल से यहाँ 17 नवंबर को शहीद दिवस मनाया जाता है, नरसंहार में मारे गए लोगों को याद किया जाता है, पूजा हवन किया जाता है और गोविंद गुरु के भजन गए जाते हैं।

अरुण वघेला बताते हैं, ''इस घटना के बाद जब भी आदिवासी एकत्रित होते थे, तो इनको 'मानगढ़ जैसी होगी' कह कर डरा दिया जाता था। गुजरात के दाहोद के विराट खेड़ी में 1938 में एकजुट हुए आदिवासियों को मानगढ़ याद दिला कर तितर बितर कर दिया गया।''

राजस्थान के डूंगरपुर, बांसवाड़ा, उदयपुर, प्रतापगढ़, राजसमंद, सिरोही, गुजरात के बनासकांठा, साबरकांठा, अरावली, महीसागर, पंचमहल, दाहोद एवं मध्यप्रदेश के झाबुआ, नीमच, रतलाम मंदसौर एवं मालवा क्षेत्र के आदिवासियों को राष्ट्र की मुख्यधारा में बनाए रखने के लिए मानगढ़ धाम को पर्यटन एवं लोक आस्था केंद्र के रूप में विकसित करने हेतु भारत सरकार द्वारा मानगढ़ धाम के विकास एवं निर्माण कार्य हेतु 22 करोड़ 40 लाख रूपया तथा राजस्थान सरकार द्वारा 5 करोड़ की राशि वर्ष 2017 में स्वीकृत की गई जिससे हेलीपैड, शहीद स्मृति स्थल, सड़क निर्माण, जनजातीय स्वतंत्रता संग्राम संग्रहालय, कम्युनिटी हॉल, अन्नपूर्णा कैंटीन, खुला रंगमंच, मेला स्थल मंच, पानी की टंकी आदि का निर्माण कार्य संपन्न हो गया है। मानगढ़ धाम के विकास हेतु सरकार द्वारा 3.05 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण किया गया है तथा राजस्थान सरकार द्वारा मानगढ़ धाम को शहीद स्मृति स्थल के रूप में विकसित किया जा रहा है। ❑

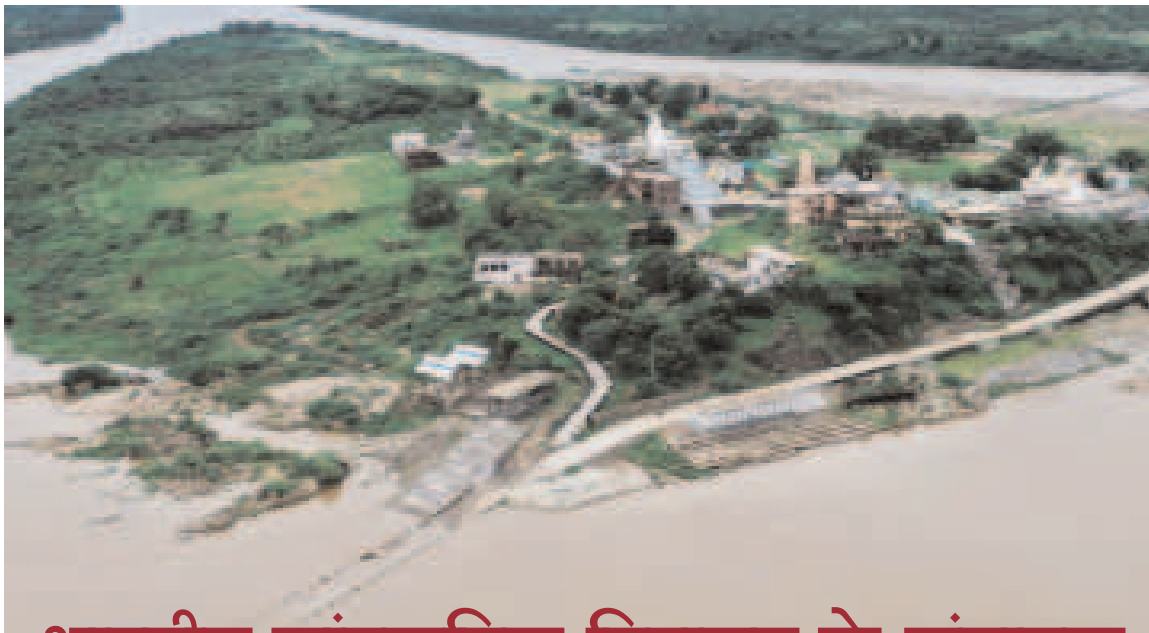

भारतीय सांस्कृतिक विरासत के संवाहक संत मावजी एवं वागड़ प्रयाग बेणेश्वर

डॉ. लक्ष्मण लाल सरगड़ा
सहायक आचार्य, चित्रकला,
श्री गोविन्द गुरु
राजकीय महाविद्यालय,
बाँसवाड़ा (राज.)

भारत ऋषि मुनियों, देवताओं व सन्तों की जन्म भूमि एवं कर्मभूमि रहा है। भौतिक दृष्टि से चाहे हम विकसित देशों की बराबरी में ना हों पर आध्यात्मिक दृष्टि से भारत आज भी विश्वगुरु ही माना जाता है। भारत के कण-कण में साधु-संतों की आध्यात्मिक आस्था का विश्वास बसा है। यहाँ की हर एक डगर से हमें किसी न किसी संत महात्मा की चमत्कारी गाथाएँ उनके शिष्यों, मतावलमबियों एवं जनमानस से सहज ही सुनने को मिल जाती है। जिन्होंने सदैव भारतीय समाज को आदर्श जीवन की राह की ओर अग्रेषित किया। साथ ही लोगों के जीवन के विकारों, अंधविश्वासों व वासनाओं को दूर करने का प्रयास भी किया। इन्हीं संत-महात्माओं के विचारों व दर्शन का ही परिणाम है कि भारत पूरे विश्व को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसा विचार दे पाया। हमने सदैव पूरे विश्व के कल्याण की कामना की है। वागड़ के संत मावजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन एवं उनकी लीलाएँ भी लोक कल्याण व वैष्णव भक्ति धारा को प्रवाहित करने की रही। कृष्ण का साक्षात् अवतार कहे जाने वाले संत मावजी ने बेणेश्वर धाम को अपनी तपोस्थली बनाया और यहीं पर माव पंथ की नींव रखी तथा प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की जो आज भी प्रासंगिक हैं। वर्तमान समय में बेणेश्वर धाम और संत मावजी एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह हैं जो हर किसी का ध्यान सहज ही अपनी ओर खींच लेते हैं। लोग यहाँ पाप-पुण्य, ज्ञान-विज्ञान, परमार्थ, आस्था-विश्वास, योग-साधना, कर्मकाण्ड, लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा, प्रेम-बंधन आदि के गूढ़ रहस्य समझने एवं अपने अहम को तिरोहित करने के लिए आते हैं। हर कोई अपनी आस्था और विश्वास के आधार पर इस त्रिवेणी संगम से कुछ न कुछ पा कर ही वापस लौटता है यही कारण है कि संत शिरोमणि मावजी महाराज ने इसी स्थल को अपनी साधना का केन्द्र बनाया।

वागड़ प्रदेश के साबला नामक ग्राम (डूँगरपुर) के निकट सुनैया नामक पहाड़ी की तलहटी में दालम ऋषि नामक औदीच्य ब्राह्मण के साधारण से परिवार में केसरबाई की कोख से 'मावजी' नामक दिव्य बालक का जन्म हुआ। विद्वानों के मतानुसार मावजी का जन्म संवत् 1771 माघ सुदी पंचमी तदनुसार 28, जनवरी सन् 1715 ई. शुक्रवार को हुआ। साबला जैसे छोटे स्थान पर जन्म लेने तथा उस समय तक राज्य में शिक्षा का वातावरण अथवा सुविधा न होने से बालक मावजी औपचारिक शिक्षा से वंचित ही रहे। उन्हें

प्रारम्भिक धर्माचरण की शिक्षा अपने पिता श्री दालम ऋषि सें ही प्राप्त हुई। 14 वर्ष की आयु तक आते-आते मावजी पूर्णत: भक्ति और जनकल्याण को समर्पित हो गये एवं संवत् 1784 में उन्होंने बेणेश्वर में अपनी गादी(पीठ) स्थापित कर माव भक्ति परम्परा का शुभारम्भ किया। जिसका उल्लेख साबला हरि मन्दिर में संरक्षित ग्रंथ 'सामसागर' के अग्र पृष्ठ पर अंकित जोग चक्र में वर्णित एवं चित्रित है यथा- ''संवत् 1784 वर्षे माघ मासे, शुक्ल पक्षे, एकादशी तिथी, गुरुवारे, रोहणी नक्षत्रे, ब्रह्मयोग वणिक करणे, प्रात: वेला, श्री बेण वृन्दावन शीर्ष धाम कीधो'' माही नदी दक्षिणी राजस्थान के इस क्षेत्र की मुख्य नदी है जिसके तट पर विभिन्न धर्मावलम्बियों के मत-पंथ, विचारों को पल्लवित होने का सहज मौका मिला। डूँगरपुर जिले की आशापुरा तहसील के नवाटापरा गाँव के पास माही, सोम एवं जाखम नदियों का पवित्र संगम स्थल है जिस पर 'बेणेश्वर' धाम अवस्थित है। संगम स्थल त्रिभुजाकार टापू के समान है स्थानीय लोगों द्वारा वागड़ी भाषा में इसे 'बेणकु' भी कहा जाता है। इसी संगम स्थल पर महारावल आसकरण ने संवत् 1510 ई. में एक शिव मन्दिर का निर्माण कराया, इस कारण यह स्थल बेणेश्वर महादेव के नाम से भी प्रसिद्ध है। मावजी की पुत्रवधू जनक कुंवरी ने भी यहाँ वि. संवत् 1850 में कृष्ण मन्दिर बनवाया था। वहीं ब्रह्माजी का मन्दिर वि.संवत् 1988 में बना।

साबला ग्रंथ के अंतिम पन्ना संख्या 333 पर भारत की पवित्र नदियों की महिमा का उल्लेख मिलता है जिसमें वाग्वर प्रदेश की पवित्र नदी माही, सोम के तट (संगम) की महिमा का सुन्दर वर्णन किया गया है यथा -

''गंगा नदी पश्चिम तटे, गोमती पूर्व भागे, गोदावरी उत्तर तटे, जमुना दक्षिण तटे, वागड़ देशे महि तटे-सोहम अस्तु।''

महीसागर का यह त्रिवेणी संगम 'वागड़ प्रयाग' देश के प्रमुख त्रिवेणी संगम तीर्थों में से एक है। जो मावजी महाराज की तपोभूमि हैं। कृष्णावतारी संत मावजी कालीन अन्य पाण्डुलिपियों में भी माही, सोम, नदियों का रोचक वर्णन है यथा -

माही उपरे हुओ जाणण-जणकार।
दास आतम नो वालमो प्रगट थयो मुरार।।

(पद-20, सामरस अमृतसार)

सोहम् माही चालीआ जलकत नीर अपार।
आबोदरा बेण पर, खेलत साम मोरार।।

(पद-40, सामरस अमृतसार)

बेणेश्वर धाम का संगम स्थल
कृष्णावतार के रूप में संत मावजी की लीलाएँ

ईश्वर अपने आप को कब, कहाँ, किस रूप में, किसके जीवन में व्यक्त करेंगा, यह जानना तत्वज्ञान की प्राप्ति की तरह कठिन है। कौन जानता था कि वागड़ की इस धरा पर एक साधारण ब्राह्मण परिवार में संत मावजी जैसे दिव्यदृष्टा का जन्म होगा, और वह भगवान श्री कृष्ण की ही भांति लीलाएँ करेगा। वागड़ क्षेत्र में सन्त मावजी के जन्म को एक दिव्य आत्मा के अवतरण के रूप में ही जाना जाता है। अपने बाल्यकाल के जीवन में ही बालक मावजी का मन भगवान श्री कृष्ण की भक्ति में पूर्ण रूप से रम गया था। श्याम की ही छवि लिये मावजी पीताम्बर धारण किए बाँस की बनी बांसुरी के मधुर स्वरों से घने वन से आच्छादित बेणेश्वर के टापू के वीरान स्थल को गुंजायमान करते थे। साधारण जनमानस उनकी लीलाएँ समझ नहीं पाते थे। कई मौजूदा कुरीतियों का विरोध और नए विचारों के कारण लोगो ने गायों को चराने वाले ग्वाल बालक मावजी को स्थानीय भाषा में 'मावजी गांडा' की संज्ञा भी दी। गुजराती एवं वागड़ी में भोले-निश्छल व्यक्ति को प्यार से 'गांडा' कहा जाता है, मावजी महाराज से संबंधित एक भजन की पंक्ति भी यही कहती है -

''**मावजी तो गांडो कैवाय महाराज**''

जब मावजी ने इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म की धारा को प्रवाहित करना प्रारम्भ किया तो इनकी चमत्कारिक प्रतिभा को देखकर इस क्षेत्र की जनता मावजी को संत के रूप में अपनाने लगी। लोग इनके शिष्य व भक्त बनने लगे और मावजी ने एक नवीन पंथ स्थापित किया जिसे 'महाराज पंथ' से जाना जाने लगा। सम्पूर्ण वाग्वरांचल, गुजरात व मेवाड़ में मावजी वैष्णव

भक्तिधारा को प्रवाहित करने लगे व हिन्दू संस्कृति के प्रमुख सूत्रधार बन गये। जनमानस ने मावजी महाराज को भगवान श्री कृष्ण के निष्कलंक अवतार के रूप में स्वीकारा और समूचे वागड़ प्रदेश में जगह-जगह उनके मन्दिर स्थापित हुए। जिनमें निष्कलंक भगवान की चतुर्भुज प्रतिमाएँ स्थापित हैं जो आज भी इसी रूप में पूजनीय हैं।

हरि मन्दिर साबला की स्थापना एवं ग्रन्थों (चैपड़ा) का निर्माण

मावजी महाराज ने अपने जन्म स्थल साबला नामक गाँव में हरि मन्दिर की स्थापना की जो उनके साहित्य लेखन व ग्रंथों के निर्माण का मुख्य केन्द्र भी बना। आज भी इस हरि मन्दिर में उनका शंख, चक्र, गदा और चरण पादुकाएँ सहित घोड़े पर सवार चतुर्भुज मूर्ति है। संत शिरोमणि मावजी महाराज ने अपनी 31 वर्ष की आयु तक लगभग 750 छोटे-बड़े ग्रंथों की रचना की। मावजी महाराज के ग्रंथ रचना के भागीरथ प्रयास में उनके प्रमुख अनुयायी शिष्यों में मुनि सर्वानन्द, विश्वामित्र, पूर्णानन्द, विश्वकीर्ति, प्रेमानन्द, जज्ञेश्वर थे जिन्होंने मावजी महाराज की अमृतवाणी को लिपिबद्ध किया एवं शल्पदा और चित्रलेखा ने इन लिपियों के भावार्थ को प्रसंगानुसार सुन्दर चित्राकृतियों में संजोया। कहा जाता है कि मावजी महाराज ने अपने परम् शिष्य जीवनदास की सहायता से इन ग्रंथों के निर्माण हेतु 42 मन कागज अहमदाबाद गुजराज से मंगवाया गया।

वैष्णव धर्मावलम्बी उनकी लिखी वाणी को रुचि से सुनते और उनके रचे भजनों को गाते हैं। मावजी महाराज 'न्याय' नामक पुस्तक रचना में शिष्य जीवनदास द्वारा किये गए 108 प्रश्नों के उत्तर बड़ी योग्यता से दिये हैं। इसके अतिरिक्त 'सामसागर', अकलरमण, सुरानन्द, भजन-स्त्रोत, ज्ञान रत्न माला, कालिंगा हरण आदि उनके तथा शिष्यों द्वारा रचित ग्रंथ है। इन सब में महारासलीला नामक 'सामसागर' सचित्र मूल ग्रंथ है जिसकी पाँच में से चार प्रतियाँ वर्तमान वागड़ प्रदेश के अलग-अलग स्थानों पर सुरक्षित है।

1. प्रथम एवं मुख्य प्रति 'सामसागर' हरि मन्दिर साबला।
2. द्वितीय प्रति 'प्रेम सागर' पुंजपुर के हरि मंदिर, डूँगरपुर।
3. तृतीय प्रति 'रतन सागर' बाँसवाड़ा शहर के विश्वकर्मा मन्दिर में।
4. चतुर्थ प्रति 'मेघ सागर' शेषपुर (मेवाड़) में सुरक्षित है।
5. पंचम प्रति 'अनन्त सागर' को माना जाता है जिसके बारे कहा जाता है कि इसे अंग्रेज अपने साथ ले गये।

18वीं सदी में रचित इन ग्रंथों की तुलना 'भगवत पुराण' व 'गीत गोविन्द' से की जाती है। लघुचित्रों से अलंकृत एवं सुन्दर अक्षरांकनों से सुसज्जित इन विशाल ग्रन्थों की रचना वागड़ प्रदेश की वागड़ी भाषा, स्थानीय लोक-वाणी, कतिपय गुजराती एवं संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हुए देवनागरी लिपि में किया गया। बेणेश्वर धाम मावजी महाराज के इन ग्रंथों की प्रेरण, लीलाओं व साधना का मुख्य केन्द्र बना।

मावजीकृत चैपड़ों में विद्यमान ज्ञान-विज्ञान, ज्योतिष ज्ञान: विशिष्ट प्रतिभा के धनी संत मावजी महाराज साहित्य, कला के मर्मज्ञ तथा भविष्यवेत्ता, ज्योतिष एवं खगोलविद् भी थे। उन्होंने अपने समय में अनेक भविष्यवाणियाँ की थीं, जिन्हें तत्कालीन शिष्य समुदाय ने ग्रंथों में लिपिबद्ध किया। उनके द्वारा अपने धर्म उपदेशों में की गई भविष्यवाणियाँ आज कलयुग के अन्तिम पड़ाव में सत्यता के धरातल पर उतर रही हैं।

धर्म जागृति, सामाजिक उत्थान के अलावा विज्ञान जगत को वस्त्र-पट चित्र (भूंगल पुराण) के रूप में मावजी महाराज की अनुपम भेंट है। 1736 फुट के कपड़े पर सचित्र पट जिसे एक नली (भूंगली) में रखा जाता था अत: इसे भूंगल पुराण भी कहते है। भूंगल पुराण की दो प्रतियाँ है। जिनका आकार समान ही है। इसकी एक प्रति शेषपुर (हेपर झेला) में और दूसरी प्रति साबला हरिमंदिर में सुरक्षित रखी गयी थी जो वर्तमान में बेणेश्वर संग्रहालय में दर्शकों के दर्शनार्थ संग्रहीत है। इन पटचित्र का अवलोकन करना भी एक गूढ़

रहस्य को जानने के समान ही है।

बेणेश्वर धाम के संग्रहालय में संग्रहीत पटचित्र में चित्रित आकृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि इन पटचित्रों में युग चक्र, ब्रह्माण्ड, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष, ज्ञान-विज्ञान आदि के रहस्यों को उजागर किया गया है। इसी पटचित्र में षष्ट् कमल दल का चित्र भी अंकित किया गया है। पटचित्र के एक कोने के छोटे हिस्से में लाल रंग की पृष्ठभूमि को दर्शाते हुए इस पर काले रंग से स्टेशन पर 'उपगृह' की आकृति तथा इसे अंतरिक्ष में छोड़े जाने के दृश्य को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है। पास में मिसाइल युक्त वायुयान, इसमें सवार (पायलट) पुरुषाकृतियाँ तथा अग्रभाग के दोनों ओर से तीन-तीन लघु मिसाइलें छोड़े जाने के संकेत भी रेखांकित हैं। चित्र के ऊपरी भाग में वायुयान, ऊर्जा उत्पान, रिमोट कन्ट्रोल की प्लेट पर बने बटनों पर हाथ थामे हुए पुरूषाकृति स्पष्ट रूप से दिखाई-पड़ती है। पुरुषाकृति के बालों से निकली लम्बी चोटी युक्त अंकित मोटी रेखा जो सीधी लड़ाकू विमान से जुड़ी हुई है तथा चित्र में बनी सभी आकृतियों से इसका सम्बन्ध बताया गया है। विज्ञानशास्त्र पर बने इस चित्र के नीचे के भाग में दो-तीन पंक्तियों में लेख भी अंकित है यथा - ''विज्ञान शास्त्र... वधीने... आकाश लोग... गा उपग्रह काम करे। अरब सागर... माँ... बधारे... इति सम्पूर्ण।।'' जो इन पटचित्रों का विज्ञान से सीधा सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

अभी भी इन पटचित्रों में अध्ययन व अनुसंधान की आवश्यकता है। विज्ञान एवं खगोलीय ज्ञान के अलावा इनमें चतुर्मुख विष्णु, चतुर्भुज ब्रह्मा, ब्रह्माणी, अन्य देवों के लघु चित्र के अलावा सृष्टि निर्माण, भूमण्डल, पृथ्वीलोक, पाताललोक, आकाशलोक, नागलोक, वराहलोक, जैन तीर्थंकरों, सभी धर्मों के ऋषियों-मुनियों, भारत वर्ष की प्रमुख नदियों, तीर्थों आदि के चित्रों के साथ उनके नामों का उल्लेख भी किया गया है जो भारतीय ज्ञान-

विज्ञान, संस्कृति, धर्म आदि का एक सम्मिलित रूप प्रस्तुत करते हैं। जिस कारण यह वस्त्र पटचित्र भारत राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विरासत है।

मावजी महाराज की आगमवाणी अथवा भविष्यवाणियाँ

संत मावजी ने अपने जीवन काल में कई आगमवाणी या भविष्यवाणियाँ की, जिन्हें भाखणी भी कहा जाता है। इनमें अधिकांश वर्तमान में घटित हो चुकी है और जो शेष रही हैं वे भी घटित होंगी ही, ऐसा विश्वास यहाँ के जनमानस में व्याप्त है। मावजी महाराज की ये भविष्यवाणियाँ उनके द्वारा रचित चैपड़ा में अलग-अलग जगह सुरक्षित हैं। ग्रंथों में लिपिबद्ध यह भविष्यवाणियों का अर्थ कहीं-कहीं इतना गूढ़ है कि विशेष दक्षता प्राप्त व्यक्ति ही उन्हें पढ़ व समझ सकता है। इन भविष्वाणियों में कुछ मुख्य आगमवाणी निम्नानुसार हैं -

- ''डोरिये दीवा बरेंगा'' अर्थात् डोरी से दिये जलेंगे-वर्तमान में तारों से बिजली प्रवाहित हो रही है और हमें प्रकाश मिल रहा है।
- ''परिए पाणी वेसायगा'' अर्थात् माप कर पानी बिकेगा- वर्तमान में मिनरल वाटर की बोतले बिक रही है। परिद्रव माप की इकाई होती थी।
- ''भेंत में भभुका फूटेगा'' अर्थात् दिवारों में पानी आयेगा- वर्तमान में हमारे सभी के घरों में पाईप लाईनों से पानी आ रहा है।
- ''वायेर वात होवेगा'' अर्थात् हवा में बात होगी- मोबाईल से हम सब बात कर रहे हैं।
- ''जमीन आसमान का परदा टूटेगा'' अर्थात् वर्तमान में मानव द्वारा अंतरिक्ष में भेजे गये उपगृहों की वजह से ओजोन परत में छिद्र हो गया है।
- ''धरती तो तांबा वरणी होसी'' अर्थात् धरती तप कर तांबे के रंग की होगी- वर्तमान में हमारी पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ता जा रहा है।
- ''पर्वत गरी ने पाणी होसी'' अर्थात् पर्वत पिघल कर पानी बनेंगे- हिम पर्वत पिघल कर पानी हो रहे हैं, समुद्र के पानी का स्तर ऊँचा उठ रहा है।
- ''खारा समुद्र जल मीठा होसी'' अर्थात् समुंद्र का खारा जल मीठा होगा- वर्तमान में विश्व के कई देशों ने नवीन तकनीकी के माध्यम से समुद्र के खारे पानी को मीठा बनाने

प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा अध्यात्म, मूल्याधारित रही है तात्कालिक शिक्षा व्यवस्था समकालीन विश्व की शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी लेकिन समय के साथ भारतीय शिक्षा का ह्रास हुआ, विदेशियों ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था को उस रूप में विकसति नहीं होने दिया, जिस अनुपात में होना चाहिए था। विशेषकर अंग्रेजों ने योजनापूर्वक भारतीय शिक्षा व्यवस्था को निष्प्रभावी बनाने का प्रयास किया। अंग्रेजों की कार्यप्रणाली इस सिद्धांत पर आधारित थी कि किसी भी राष्ट्र को अपने नियंत्रण में रखना है, तो वहाँ के ज्ञान, साहित्य, शिक्षा और संस्कृति को नष्ट कर दिया जाए।

में सफलता हासिल की है।

- ''पाणी रे मई थकी लाय उपजसी'' अर्थात् पानी के अन्दर से आग निकलेगी- वर्तमान में समुद्र भी ऊर्जा का स्रोत बन रहा है।
- ''हिन्दू मुसलमान एक होसी एक थाली में जीमन जीमासी'' अर्थात हिन्दू-मुस्लीम एक होंगे, एक थाली में भोजन करेंगे- हिन्दू व मुस्लिम भाईचारा बढ़ रहा है और कुछ राजाओं ने आपस में विवाह संबंध भी स्थापित किये।
- ''बरद ना सीर थकी भार उतर से'' अर्थात् बैलों के सिर से भार हटेगा- वर्तमान में खेती के कार्य हेतु या खेत जोतने के लिए बैलों के स्थान पर ट्रेक्टर का उपयोग हो रहा है।
- ''बाघ सारी जोड़े बंधासी'' अर्थात् बकरी व बाघ साथ-साथ बांधे जायेंगे- आज देश में लोकतंत्र में राजा और प्रजा का भेद मिट गया है।
- ''आत्तम करिया तो मध्यम थासी, मध्यम करिया ओत्तम थासी'' अर्थात् ऊँच-नीच वर्णाश्रमों का भेद लुप्त हो जायेगा- वर्तमान में अन्तर्जातीय विवाह इसी का प्रमाण है।
- ''पूरब-पश्चिम वायरा वाजसी सर्वे वाणी फरसी रे'' अर्थात् पूरब-पश्चिम की संस्कृति में मेल-जोल होगा'- आज भारत भी पाश्चात्य संस्कृति के अनुसरण से बच नहीं पाया।

यहाँ के माव भक्तों द्वारा आज भी यह आगमवाणी गायी जाती है यथा - ''सब देवन का डेरा उठसे, निष्कलंक का डेरा रेसे, धोलागढ़ ढोलकी वाजे महाराज, बेणेश्वर बेणको रेसासे महाराज, दिल्ली तम्बु तणाए महाराज, चित्तोड़ ऊपर सोरी सितराए महाराज, माण्डवगढ़ माण्डवों रोपाए महाराज, तलवाड़े तोरण रोपाए महाराज.....''

धर्मजागरण एवं सामाजिक समरसता के पुरोधा संत मावजी

भारत आध्यात्मिक विश्व गुरु कहा जाता है। यह वह भूमि है जहाँ ईश्वर मनुष्य रूप में ही नहीं अपितु जलचर एवं नभचर किसी भी प्राणी के रूप में अवतार ग्रहण करते हैं। ये अवतार प्राणी मात्र के प्रति सद्भाव एवं समन्वय की शिक्षा देते हैं। तभी सृष्टि का रक्षण एवं सुख-शान्ति संभव है। अवतार की बात पौराणिक कथा या कल्पना मात्र नहीं है। वाग्वर प्रदेश में मावजी महाराज के प्रादुर्भाव का प्रत्यक्षदर्शी एवं साक्षी है। उनके प्रादुर्भाव से लेकर अब तक जो भक्ति श्रृंखला की परम्परा बनी है वह अवश्य विश्वास दिलाती है कि वह भगवान श्री कृष्ण के अवतार हैं। अनपढ़ होकर भी उनके द्वारा लिखे गये चैपड़े उनकी महिमा का गान करने के साथ-साथ जन सामान्य को जीने की राह दिखाते हैं। तपोभूमि बेणेश्वर में मावजी महाराज ने जो रासलीलाएँ की उनमें सभी जाति-धर्मों के लोगों को शामिल किया। शोषित वर्ग के लोगों को अपने बराबर का दर्जा देकर उन्हें सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार दिलाया। अपने उपदेशों में उन्होंने घोषणा की थी कि एक दिन जात-पात का भेद मिट जायेगा। छुआछूत, विधवा विवाह आदि को मिटाने के लिए उन्होंने स्वयं के जीवन से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए सागवाड़ा की गुजराती पाटीदार मनुबाई से विवाह किया जो एक विधवा स्त्री थी। तत्कालीन निम्न समझे जाने वाले वर्ग को साद (शुद्ध या पवित्र) संज्ञा देकर उन्हें मंदिर प्रवेश व पूजा का अधिकार देते हुए माघ शुक्ल पूर्णिमा को होने वाले महारास में खेलने का अधिकार दिया। संत मावजी महाराज त्रेता युग में श्री कृष्ण द्वारा अधूरी छोड़ी गई रास लीलाओं के माध्यम से जन-शिक्षा, पतितोद्धार तथा उन्हें समाज में

सम्मानजनक स्थान दिलवाने हेतु प्रयास किये। अपनी इसी सामाजिक सद्भावना की सोच के कारण तत्कालीन अभिजात्य वर्ग का उन्हें भारी विरोध सहना पड़ा। मावजी महाराज की इसी समाजोद्धारक गतिविधियों के कारण उन्हें तत्कालीन डूँगरपुर महारावल शिव सिंह द्वारा गिरफ्तार करवाया गया। किन्तु मावजी महाराज के चमत्कारिक व्यक्तित्व एवं जन समर्थन को देखते हुए उन्हें रिहा कर दिया गया। इतना ही नहीं उन्हें धर्म प्रचार-प्रसार के लिये बेणेश्वर व आसपास की सारी भूमि दान में प्रदान की गई। इस बात का प्रमाणीकरण इसी बात से होता है कि आज भी बेणेश्वर व इसके आस-पास की भूमि राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज नहीं है। किन्तु इस घटना के पश्चात् मावजी महाराज पुनः बेणेश्वर धाम नहीं लौटे। और शायद यही कारण है कि मावजी महाराज ने अपने जीवन का अन्तिम समय अपनी जन्मस्थली व तपोस्थली बेणेश्वर को छोड़कर धोलागढ़ पर्वत की तलहटी में बसे एक छोटे से गाँव शेषपुर, मेवाड़ में बिताये।

उनके प्रमुख भक्तों में साद समुदाय के अलावा जनजातीय क्षेत्र के सभी वर्गों के लोग हैं जिन्हें मावभक्त कहा जाता है। जिसमें भील समुदाय बड़ी संख्या में शामिल है। माव भक्त सम्प्रदाय प्रति वर्ष बेणेश्वर मेले के शुभारम्भ से लेकर अन्त तक उसके सभी विधि-विधानों को निभाने का साक्षी होता है। मावजी महाराज भीलों के आराध्य देव हैं। बेणेश्वर में उनकी गादी है। उनके देहत्याग से लेकर लगातार यहाँ माघपूर्णिमा पर विशाल मेला भरता है। यहाँ प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में राजस्थान, गुजरात और मध्यप्रदेश से माव-भक्त दर्शनार्थ आते हैं। मेले के अवसर पर जनजातीय लोग विशाल समूहों में गाँव-गाँव से अस्थि विसर्जन के लिए आते हैं। वर्ष भर गाँव में जितने भी देहावसान होते हैं उनकी अस्थियों का विसर्जन माघ-माह में बेणेश्वर के आबुदर्रा नामक पवित्र घाट के पानी में करते हैं। मान्यता है कि ऐसा करने से जीवात्मा मुक्त हो जाता है। भव बन्धनों से मुक्त होकर परमात्मा स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मावजी महाराज ने यहाँ के जनसामान्य में और विशेषकर वंचित वर्ग में आध्यात्मिक चेतना पैदा की। उनके भीतर आत्मश्विास पैदा किया। उनमें यह अनुभूति उत्पन्न की, कि उन्हें भी जीवन के परमानन्द परमात्मा स्वरूप को जानने एवं अनुभव करने का अधिकार है।

भारतीय संस्कृति अनेक विशेषताओं का मिश्रण है। इसे वैदिक संस्कृति भी कहा जाता है। वाग्वर प्रदेश जनजातीय प्रदेश है। यहाँ के लोग चाहे वे किसी भी धर्म के क्यों न हों, सभी सनातन धर्म एवं संस्कृति को मानते आये हैं। मावजी महाराज के विषय में अध्ययन करने से तथा तद्विषयक परम्पराओं को देखने से स्पष्ट होता है कि जनजातीय लोग सनातन धर्मी हैं। वैदिक-संस्कृति के उपासक हैं। वैदिक संस्कृति में प्रकृति के सभी रूप किसी न किसी देव रूप में स्तुत्य हैं। पुरुष सूक्त में स्पष्ट कहा गया है कि सभी वर्ण, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सब पुरुष (परमात्मा) स्वरूप हैं- ''पुरुषेव इदं सर्वम्.....।'' जनजातीय लोग भी ऐसी ही मान्यता रखते हैं। वे भी सनातन धर्मियों की तरह प्रकृति की विविध शक्तियों की स्तुति करते हैं और पूजन करते हैं। उनका अपना तरीका है। यहाँ की जनजातियाँ सदाचार व भ्रातृत्व भाव के साथ रहती हैं। मावजी महाराज के प्रति उनकी श्रद्धा व भक्ति इनके सनातनी होने को प्रमाणित करती है।

मावजी महाराज ने सभी जाति-धर्मों-वर्णों के लोगों के बीच समत्व, सदाचार एवं भाईचारे का विकास किया। प्रेम पूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान दी। गाय अथवा जीवों के संरक्षण एवं अहिंसा की शिक्षा प्रदान की। माघ मास में समूहों में लोग आकर अस्थिविसर्जन, पवित्र स्नान आदि के बाद सामूहिक सात्विक भोज करते हैं। पूर्णिमा से लेकर पाचम तक यहीं रूक कर मावजी महाराज की रासलीलाओं एवं महाराज जी के उपदेशों को ग्रहण करते हैं। मावजी महाराज ने यहाँ के पिछड़े तबके के लोगों को जीने का मार्ग सिखलाया। नशाखोरी, भेदभाव, मांसाहार आदि से निजात दिलवाई। उनके उपदेश आज तक लगातार जीवन का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं और करते रहेंगे। उन्होंने निम्न वर्ग को बोध कराया कि वे सामान्य मानव से भिन्न नहीं अपितु उनसे भी श्रेष्ठ हैं। वे निश्छल हैं, प्रकृति पूजक हैं शोषक नहीं। इसलिए बेणेश्वर धाम एवं यहाँ का मेला सभी वर्गों-धर्मों के लोगों के लिए महाकुम्भ से कम नहीं है इसलिए इसे वागड़ का महाकुम्भ कहा जाता है।

17वीं सदी में संत शिरोमणी मावजी महाराज ने इस प्रदेश में सगुण भक्ति की जिस धारा का प्रवर्तन किया उसके लिए सम्पूर्ण वागड़ पूज्य मावजी महाराज का सदैव ऋणी रहेगा। उनके ज्ञान, विचार, वाणियाँ, धर्मोपदेशों ने इस वागड़ धरा को पावन बना दिया। इसी का परिणाम है कि राजस्थान के इस दक्षिणी आँचल में सनातन धर्म की जड़ें इतनी गहरी हैं। राजस्थान का यह भाग जनजाति क्षेत्र है। इस क्षेत्र में वनविहारी समुदायों की बहुलता है। इस क्षेत्र के सभी समुदायों के लिए बेणेश्वर धाम अपनी धार्मिक आस्था को व्यक्त करने का मुख्य केन्द्र है। सनातनी धर्म की मुख्य विचारधारा में आत्मा-परमात्मा के विश्वास का एक दृढ़ सूत्र विद्यमान है। माव दर्शन के अनुसार परमात्मा सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है। माव सम्प्रदाय भारतीय सनातन धर्म के पूर्वजों की अस्थियों के विसर्जन एवं तर्पण की मान्यता या कर्मकाण्ड को स्वीकार करता है और आज तक इस परम्परा का निर्वहन कर रहा है। अपनी इस परम्परा को निभाने के साथ वह उस परम पिता परमेश्वर को भी धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिसकी वहज से यह सृष्टि जीवित है, चलायमान है। ❑

भारतीय पर्वत और नदियों की तीर्थ-संस्कृति

डॉ. शिवशरण कौशिक
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
राजगढ़, अलवर (राज.)

भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ उसके भौगोलिक और प्राकृतिक परिवेश का दायभाग हैं। उसकी नदियाँ, धरती, पर्वत, वन, समुद्र आदि की सजीव चित्रमयता को आदिकाल से ही अनेक भाषाओं में प्रकट किया जाता रहा है। भारत की वेद परंपरा से ही भारत भूमि की पवित्रता और उसके अद्‌भुत प्राकृतिक सौंदर्य के विभिन्न स्वरूपों का गरिमामय वर्णन भारतीय तथा अभारतीय भाषाओं के विद्वानों ने समान रूप से किया है। शास्त्रों में उल्लेख है कि जिन प्राकृतिक कारणों से हिमालय का जन्म हुआ उसी से समुद्र भी फटे होंगे; फिर उसी क्रम से अधिक जल लाने वाली नदियों की यात्रा दीर्घ हो गई होगी और कम जलवाली सिकता में खो गई होंगी।

भूगर्भवेत्ताओं के अनुसार इस प्रकार के परिवर्तन में 25000 वर्षों से लेकर 75000 वर्ष तक लग सकते हैं। ऐसी स्थिति में वैदिक साहित्य के निर्माण काल के संबंध में 'न इति न इति' कहना ही उचित होगा। समय सागर का यह असीम विस्तार तब हमें विस्मय के चरम तक पहुँचा देता है, जब हम अनुभव करते हैं कि इसकी हर लहर हमारी चिर परिचित है। हिमालय के लिए हिमवत् नाम ऋग्वेद और अथर्व में अनेक बार आया है। मूजवत् पर्वत का जो उल्लेख ऋग्वेद, अथर्व, शतपथ ब्राह्मण आदि में मिलता है उस से ज्ञात होता है कि वह गांधार प्रदेश में स्थिति रखता था और उसके उत्तर में रुद्र का स्थान था। महाभारत ने –

गिरेर्हिमवन्तः पृष्ठे मुंजवान् नाम पर्वतः
तप्यते तत्र भगवान् तपो नित्यमुमापतिः

कहकर इसे स्मरण किया है ।

तैत्तिरीय आरण्यक में तीन पर्वतों का उल्लेख है –

सुदर्शने क्रौञ्चे मैनाके महागिरौ।

पुराणों तथा महाभारत के अनुसार मैनाक कैलाश से उत्तर में है और इसके निकट बिंदुसागर सरोवर गंगा का उद्‌गम स्थल है। बृहत्संहिता के अनुसार क्रौंच पर्वत मानसरोवर और कैलाश से दक्षिण में है और इसी के रंध्र या दर्रे से हंस मानसरोवर पहुँचते हैं। हिमालय की तीन श्रेणियाँ बाहुओं के समान पूर्व और पश्चिम छोरों तक फैली हुई हैं। बाहरी शृंखला में शिवालिक की श्रेणियाँ हैं, दूसरी में कश्मीर, कांगड़ा, कूर्मांचल आदि हैं और फिर महा हिमवंत की श्रेणी में नंदा देवी, त्रिशूली, गौरी शंकर आदि उन्नत शिखर हैं। इसी श्रेणी में तुंगनाथ बदरी, केदार आदि की स्थिति है। वहीं कुबेर की अलकापुरी बसी है। बदरिकाश्रम के पास ही गंधमादन पर्वत है, जिसे महाभारतकार वेदव्यास जी ने अतिपरिचित बना दिया है। इस श्रेणी में 18000 से लेकर 30000 फुट तक ऊँचे हिमावृत्त शिखर हैं। पूर्व की श्रेणियों में लोहित क्षेत्र और ब्रह्मपुत्र की घाटी है। पश्चिमी सीमांत के कृष्णागिरि और शर्यणावत् क्षेत्र का ज्ञान भी ऋग्वेद के ऋषि को था।

संसार के किसी पर्वत की जीवन कथा इतनी रहस्यमयी न होगी जितनी हिमालय की है। उसकी हर चोटी, हर घाटी हमारे धर्म, दर्शन, काव्य से ही नहीं, हमारे जीवन के संपूर्ण नि:श्रेयस से जुड़ी हुई है। जिस प्रकार गंगा-यमुना और अंत:सलिला सरस्वती के बिना हमारे महादेश के सजल पर रहस्यमय हृदय की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार अभ्रंकष (गगनचुंबी) हिमालय के बिना देश के उन्नत मस्तक की कल्पना संभव नहीं है। इसीलिए सदियों से भारत की जनता हिमालय पर्वत को अपने तीर्थों का मस्तक और मुकुट मानती आई है क्योंकि संसार के किसी अन्य पर्वत को मानव की संस्कृति, काव्य, दर्शन, धर्म आदि के निर्माण में ऐसा महत्त्व नहीं मिला है, जैसा हमारे हिमालय को प्राप्त है। वह मानो भारत की संश्लिष्ट विशेषताओं का ऐसा अखंड विग्रह है, जिस पर काल कोई खरोंच भी नहीं लगा सका।

वस्तुत: हिमालय भारतीय संस्कृति के हर नए चरण का पुरातन साथी रहा है। भारतीय जीवन उसकी उजली छाया में पलकर सुंदर हुआ है, उसकी शुभ्र ऊँचाई छूने के लिए उन्नत बना है और उसके हृदय से प्रवाहित नदियों में धुलकर निखरा है। शास्त्र यह भी बताते हैं कि प्राकृतिक परिवेश में परिवर्तन स्वाभाविक ही रहते हैं। जहाँ अतीतकाल में गंभीर वेगवती नदियाँ थीं, वहाँ जलते ताम्रपत्र जैसा दृष्टि को झुलसा देने वाला मरू प्रदेश का विस्तार भी है; जहां अतल समुद्र था वहाँ सम-विषम समतल गर्त निकल आए हैं। ऋतुएँ बदल गईं, वनस्पतियों में परिवर्तन हो गया है और ग्रह नक्षत्रों की गति में अंतर आ गया है। परंतु वैदिक युग से अधुनातन युग तक हिमालय से भारतीय जीवन का रागात्मक संबंध उत्तरोत्तर गहरा ही होता रहा है। यह गहराई इस सीमा तक पहुँच गई है कि हिमालय को कभी न देख पाने वाला भी उससे दूरी का अनुभव नहीं करता और उसे सदैव तीर्थों के मुकुट के रूप में पूज्य मानता है।

जीवन के अतल समुद्र से अपनी विशिष्ट मेधा के साथ उठने वाले वैदिक मानव के समान ही, पृथ्वी के किसी कंपन के कारण जल राशि से हिमालय भी ऊपर उठा होगा। पृथ्वी और पर्वत दोनों में वह विस्फोट-जनित कंपन कुछ समय शेष रहा होगा। यही शास्त्रोक्त ज्ञान-विज्ञान और हिमवंत तथा भारत भूमि (माता) के प्रति गंभीर अनुराग का संस्कार लेकर युग युगांतर तक नवीन पीढ़ियाँ आती रही हैं। ऋग्वेद के ऋषि का हिमवंत आदि कवि वाल्मीकि के युग तक पहुँचते-पहुँचते शैल-पर्वत का विशेष व्यक्तित्व पा लेता है। महाभारतकार उसे स्मरण ही नहीं करता, प्रत्युत, हिंसाजनित विजय से क्षुब्ध पांडवों को उसके हिमशीतल अंक में समाधिस्थ कर देता है। कविगुरु कालिदास के काव्यों में तो हिमालय सुख-दुख के अनंत उच्छ्वासों में स्पंदित हो उठता है उससे जन्म पाने वाली पार्वती धरती तपश्चरण द्वारा ही शिव को वरण करके अपराजेय कुमार को जन्म देती है।

यह कहा जा सकता है कि भारत के सांस्कृतिक विस्तार में प्रकृति और परिवेशगत चीजों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जिनमें विशेष रूप से अनेक पर्वत श्रृंखलाएँ और सहस्त्रों नदियों की धाराएँ हैं। भारत का समस्त आध्यात्मिक और सांस्कृतिक वैभव इन्हीं नदियों और पर्वतों की गोद निर्मित और समृद्ध हुआ है। इसलिए हमारे पर्वत और नदियाँ ही हमारे सच्चे तीर्थ स्थल हैं जिनसे आगे चलकर भारतीय सभ्यता का विकास हुआ।

हिमालय को हमने दुर्लंघ्य माना है, अलंघ्य नहीं। यही कारण है कि मानसरोवर तथा कैलाश को भारतवासी अपने महादेश का पवित्रतम भाग मानता रहा है और प्रत्येक युग में कवियों ने उसके स्मरण से अपने काव्य को पवित्र बनाया है। वह शिव का आवास ही नहीं जीवन की क्षमता का भी प्रतीक है। जैसे-जैसे सप्तसैंधव की संस्कृतिवाहिनी आगे बढ़ती गई, अन्य पर्वत भी उसकी आत्मीयता की सीमा में आते गए। अनेक पौराणिक कथाओं का केंद्र पुरातन विंध्य, राजस्थान का अर्वुद, विंध्य के दक्षिण का ऋक्ष (सतपुड़ा की श्रेणियाँ) शुक्तिमान की पहाड़ियाँ, दक्षिणापथ के सह्याद्रि, मलय आदि से मानो एक विशाल पर्वत परिवार ही स्थापित हो गया, जिसमें ये सब मिलकर ही इस पृथ्वी माता के भरण-पोषण का कर्तव्य संभालते हैं।

भारत नदियों की दृष्टि से भी बहुत समृद्ध रहा है उसकी संस्कृति का आरंभ और विकास नदियों के तट पर ही हुआ है। उनके प्रति भक्तिभाव उसकी संस्कृति की विशेषता बन गया है। पर्वत और नदियाँ समान रूप से भारत में तीर्थों के श्रेष्ठ स्थल बन गए हैं। वैदिक वांग्मय में अनेक नदियों के नाम आए हैं जिनमें कुछ के नामों में परिवर्तन हो गया है और कुछ अब अफगानिस्तान के सीमा क्षेत्र में हैं। परंतु अधिकांश नदियाँ हमारी जानी पहचानी ही नहीं, शरीर की रक्त वाहिनी शिराओं के समान जीवन और संस्कृति की वाहिनी भी हैं। पुराण तो कई सौ नदियों की सूची देते हैं परंतु ऋग्वेद में उल्लिखित नदियों की संख्या भी कम नहीं है। अष्टक ऋषि (विश्वामित्र के पुत्र) सप्त आप के अतिरिक्त अन्य 99 नदियों की चर्चा करते हैं -

नवति नव च स्रोत्य श्रवंती। अर्थात् 99 बहती हुई नदियाँ। सप्त सिंधु का उल्लेख अनेक बार हुआ है। तत्कालीन प्रमुख नदियों में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (रावी),

आस्किनी (चिनाब), वितस्ता (झेलम), अर्जिकाया (व्यास), सिंधु सुषोमा (सौहान), मरुद्वधा, कृष्णा , तुष्टामा रसा, श्वेत्या, गोमती (गोमल), क्रम (कुर्रम), मेहलु , दृषद्वती की चर्चा बार-बार होती रहती है। जलवायु के परिवर्तन से उत्पन्न वर्षण-अवर्षण का प्रभाव नदियों पर विशेष रूप से पड़ता है। पृथ्वी के कंपन से इनकी गति और स्थिति में परिवर्तन स्वाभाविक हो जाता है। आज अराल सागर में गिरने वाली नदी पहले कश्यप ह्रद में गिरती थी। जिस सरस्वती की स्मृति में वैदिक ऋषि की कल्पना सुंदर छंद रचना में व्यक्त हुई है, वह पहले राजपूताना (वर्तमान पूर्वी राजस्थान) में स्थित समुद्र में गिरती थी। जब समुद्र पीछे हटा और पर्याप्त मिट्टी न पड सकने के कारण वहाँ मरु का विस्तार मात्र रह गया, तब वह महानदी तन्वी होते-होते सिकता में खो गई। दृषद्वती सरस्वती के समानांतर बहते हुए उसी में मिल जाती थी। ये दोनों ही सरिताएँ जो यज्ञ का प्रमुख स्थान थी, कालांतर में प्राकृतिक कारणों से लुप्त हो गईं। परंतु संस्कारजन्य स्नेह और श्रद्धा के कारण भारतीय मानस सरस्वती को अंत:सलिला कहकर और त्रिवेणी में उसकी स्थिति मानकर आज भी प्रसन्न होता है। उसे अपने तीर्थों में स्थान देता है। क्रमश: प्रसार के कारण जब दक्षिण की नदियाँ परिचय की सीमा में आ गईं तब से भारतीय जनमानस प्रत्येक संकल्प के अवसर पर संपूर्ण भारतवर्ष का ही स्मरण नहीं करता वह -

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेस्मिन सन्निधिं कुरु।

कहकर पवित्र होता है।

नदियों का यह अखिल भारतीय स्वरूप हमारी राष्ट्रीय एकात्मता का प्रबल आधार है।

बार-बार यह कहा जाता है कि भारत का श्रेष्ठतम ज्ञान-विज्ञान पर्वतों की शृंखलाओं और नदियों के तटों पर ही रचा गया। प्रकृति के सौंदर्य की निश्चित रेखाओं के मध्य चेतना का आरोहण-आवरोहण निश्चित ही अधिक उद्दीप्त होता है। इसलिए हमारे ऋषि-ऋषिकाओं का सूक्ष्म निरीक्षण और अन्वेषण का स्थान ये नदी और पर्वत ही बने हैं। यहीं से हमारी सांस्कृतिक ऊर्जा निस्सृत हुई है। पर्वत और इनसे निकलने वाली नदियों की संस्कृति के कारण ही भारतीय जीवन की अरण्य संस्कृति अथवा कृषि संस्कृति, हलधर (पृथ्वी पुत्र) संस्कृति का विकास होता रहा है। यह संस्कृति हम सब भारतवासियों को कर्म जगत में धरती से बांधे रहती है। श्रम की साधना का आदिपाठ हमें इन पर्वत-नदी रूपी तीर्थस्थलों से ही सुलभ हुआ है।

वस्तुत: इसी प्राकृतिक सुलभता और समृद्धि ने हिंदुओं के तीर्थ, मठ और प्रमुख मंदिरों के निर्माण की प्रेरणा दी। नदियों के तट पर पवित्र तीर्थस्थल और पर्वतों की गुफाओं में शक्तिपीठों और आश्रमों का निर्माण भी क्रमश: हुआ। कर्नाटक प्रांत की तुंगा नदी के किनारे आदि शंकराचार्य का शृंगेरी मठ, श्री राम की जन्मभूमि अयोध्या सरयू नदी के किनारे, श्री कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा की यमुना नदी के किनारे और काशी विश्वनाथ जैसे महान तीर्थ का निर्माण बनारस की गंगा नदी के तट पर हुआ है। गंगा नदी के किनारे ही ऋषिकेश, हरिद्वार आदि महत्त्वपूर्ण तीर्थों का सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक विकास हुआ है, गंगा-यमुना-सरस्वती के त्रिवेणी संगम पर प्रयाग में संगम पवित्र स्थल है। महाराष्ट्र प्रांत की गोदावरी के तट पर त्रंबकेश्वर, तमिलनाडु की कावेरी नदी के तट पर श्रीरंगम, मध्यप्रदेश की नर्मदा नदी के तट पर ओम्कारेश्वर ज्योतिर्लिंग, नर्मदा के ही किनारे अमरकंटक और नेमावर आदि तीर्थ स्थित हैं। असम में ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर कामाख्या मंदिर, उत्तर में सिंधु की सहायक झेलम नदी के किनारे श्रीनगर शहर और आदि शंकराचार्य का प्राचीन मंदिर स्थित है। उत्तराखंड में अलकनंदा के किनारे बद्रीनाथ, मंदाकिनी के किनारे केदारनाथ और दक्षिण में पश्चिम बंगाल में स्थित गंगासागर हमारे पवित्र तीर्थ स्थल हैं जो हमारी नदियों की प्राचीनता और सुदीर्घ सभ्यता की परंपरा को धाराप्रवाह आगे बढ़ाते हैं।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि भारत के सांस्कृतिक विस्तार में प्रकृति और परिवेशगत चीजों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जिनमें विशेष रूप से अनेक पर्वत शृंखलाएँ और सहस्त्रों नदियों की धाराएँ हैं। भारत का समस्त आध्यात्मिक और सांस्कृतिक वैभव इन्हीं नदियों और पर्वतों की गोद में निर्मित और समृद्ध हुआ है। इसलिए हमारे पर्वत और नदियाँ ही हमारे सच्चे तीर्थ स्थल हैं जिनसे आगे चलकर भारतीय सभ्यता का विकास हुआ। ❑

राष्ट्रीय एकात्मतामय तीर्थ राजस्थान का रामदेवरा

डॉ. ओमप्रकाश पारीक
सह आचार्य (संस्कृत)
राजकीय महाविद्यालय,
आहोर, जालोर (राज.)

ज्ञान बहुत से निमित्तों का आश्रय बनकर मनुष्य के अज्ञान को दूर कर अन्त:करण को पवित्र एवं निर्मल बनाता है उनमें व्रत, उपवास, यज्ञ, तीर्थ, यात्रा आदि हो सकते हैं। हमारी ज्ञानाश्रयी संस्कृति के ये सभी घटक भी हैं। इनमें तीर्थों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। तीर्थों पर अन्त:करण की पवित्रता, शुभ संकल्प एवं प्रसन्नता के लिये दूर-दूर से श्रद्धालु आते हैं जिससे वे अपने प्रयोजन की तो सिद्धि करते ही हैं अपितु एक ही श्रद्धाजल में स्नान करते हुये परस्पर आत्मीय बनकर एक-दूसरे के खान-पान, वेष-भूषा, आचार-विचारों से तादात्म्य कर राष्ट्रीय एकता के भाव में भी बँध जाते हैं। शास्त्रों में तीन प्रकार के तीर्थ माने गये हैं जंगम, मानस और स्थावर। अपने धर्म का पालन करने वाले आदर्श एवं ब्रह्मज्ञान वाले संत महात्मा जंगम तीर्थ कहलाते हैं। सत्य , क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, दया, सरलता, मृदुभाषण, ब्रह्मचर्य, दान, धर्म, धृति, पुण्य आदि मानस तीर्थ होते हैं। अर्थात् मन की शुद्धि ही सबसे उत्तम तीर्थ है। पृथ्वी के कुछ भाग वहाँ की भूमि के प्रभाव के कारण, वहाँ के जल के प्रभाव के कारण वहाँ के मुनि महात्माओं के सम्बन्ध एवं निवास के कारण अत्यन्त पवित्र हो गये हैं जो कि स्थावर या भौम तीर्थ कहलाते हैं। ऐसे स्थान हमारे भारत देश में अनेक हैं। इसलिये पूरी भारत भूमि को ही साक्षात् तीर्थ कहा गया है।

प्रभावाद्भुताद् भूमेः
सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनां च
तीर्थानां पुण्यता मता।।
(महा. अनु./108/19)

त्रयाणामपि लोकानां
तीर्थमध्यमुदाहृतम्।
जाम्बवे भारतवर्षं तीर्थं
त्रैलोक्य विश्रुतम्।।

तीर्थ का शाब्दिक अर्थ है पवित्र करने वाला। जिन स्थानों पर महापुरुषों का उनके जन्म एवं लीला और चमत्कारों के कारण प्रभाव रहा है वहाँ, का पर्यावरण अत्यन्त सात्त्विक ऊर्जायुक्त होता है उस ऊर्जा जल में स्नान करके मनुष्य अपने मन को तो पवित्र करता ही है साथ ही यदि मन में कोई संकल्प या कामना है तो वही ऊर्जा और महापुरुष का प्रभाव उस संकल्प को फलित भी कर देते हैं। जिससे

सांसारिक जन अपने-अपने स्वभाव एवं कर्म के अनुसार तीर्थों में अपनी कामनाओं की पूर्ति करते हैं। ऐसे ही तीर्थों में राजस्थान में पोकरण से 7 मील पहले रामदेवरा स्थान है जहाँ बाबा रामदेवजी की समाधि है। संत रामदेवजी को द्वारकाधीश भगवान श्री कृष्ण का भी अवतार मानते हैं। लोग यहाँ स्थित रामसरोवर में डुबकी लगाकर अपने को धन्य करते हैं। भाद्रशुक्ल पक्ष एवं माघ शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से एकादशी तक यहाँ मेला लगता है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ का सरोवर स्वयं रामदेवजी द्वारा ही बनवाया गया है। जब रामायण में श्रीराम द्वारा समुद्र के शोषण के लिये बाण चढ़ाया गया था और समुद्र के विनम्र होने से उस पर वह बाण संधान नहीं किया गया तब राक्षसों के वध के लिये समुद्र के उत्तरी तट पर उस बाण का संधान किया था, वह बाण इसी स्थान पर गिरा जिससे पाताल फटकर जल धारा निकली, वह आज भी निकल रही है। बाबा रामदेव के पिता का नाम अजमल था माता का नाम मैणादे था। ये जाति से तंवर वंशीय राजपूत थे। जो कि अपने को पाण्डववंशीय मानते हैं। रामदेवरा में एक प्राचीन कुआँ है जिसका नाम रुणिचा है, रामदेवजी के पिता अजमलजी यहाँ बस गये थे इसी से इस स्थान का नाम रुणिचा पड़ा है, यहीं रामदेवजी का जन्म चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी वि.स. 1409 में हुआ। रामदेवजी को भगवान कृष्ण के अवतार, लोकदेवता एवं पीर के रूप में दूर-दूर से आकर श्रद्धालु पूजते हैं। ऐसा माना जाता है कि इनके पिता के कोई सन्तान नहीं थी, तब एक दिन द्वारकाधीश के गुजरात पहुँच कर उन्होंने भगवान से कहा कि यदि आप भगवान हैं तो प्रत्युत्तर क्यूँ नहीं देते। पुजारियों ने कहा कि वे भगवान सागर में रहते हैं तब इनके पिता सागर में कूद गये। वहाँ भगवान मिले जिन्होंने वरदान दिया कि मैं तुम्हारे छोटे बेटे के रूप में अवतार लूँगा। वहाँ भैरव राक्षस का आंतक है उससे धर्म को बचाना है।

द्वारका रा देव आया अजमल घर
देह धारी पीगे परियाण
दिन रा दीपक हर संयोया
हद खुलगी हीरां री खाण

(हरजी भाटी वाणी सं. 34)

बाबा रामदेव लोक देवता के रूप में सामान्य जन जीवन के आराध्य हैं ग्रामीण लोग ग्राम-ग्राम में खेजड़ी के वृक्ष के नीचे आलिये के प्रकार का स्थान बनाकर उसमें रामदेवजी के पगले पधारते हैं जिसे थान कहते हैं इस प्रकार सामान्य जनजीवन श्रद्धा के तारों द्वारा रामदेवजी से जुड़ा रहता है। बाबा रामदेवजी के रामदेवरा में लोग अपनी विभिन्न मान्यताओं को लेकर दूर-दूर से पैदल एवं वाहनों से यात्रा करते हैं। वहाँ के सरोवर में स्नान करते हैं। रामदेवजी के चमत्कार जन-जन में प्रसिद्ध हैं यहाँ निर्धन को धन, पंगु को पाँव, अन्धे को आँखें सन्तान हीनों को सन्तान की प्राप्ति होती है। कुष्ठ जैसे भयंकर रोगों का निवारण भी हो जाता है यह लोगों में आस्था है। बाबा रामदेव जी ने ऊँच-नीच जाति-पाति की विषमताओं को दूर कर समाज के सभी वर्गों के कल्याण का कार्य किया है। मुस्लिम समुदाय के लोग भी बाबा रामदेव को पीर के रूप में पूजते हैं। बाबा रामदेवजी के परचे प्रसिद्ध हैं जो कि जन सामान्य, दीन दुखियों के दु:खों कष्टों को दूर कर देते हैं। बाबा रामदेव को श्रद्धालु रामसा पीर भी कहते हैं। ये कवि संत भी थे जिनकी चौबीस बाणियाँ प्रसिद्ध

हैं जिनमें जीवन की प्रेरणा, मोक्ष का संदेश तथा लोक कल्याण की बातें हैं। रामदेवजी पिछड़े वर्गों , अनाथों और गरीबों का साथ देते थे उन्होंने कभी भी राजाओं, साम्राज्यों की न तो संगत की न ही उनकी कोई प्रशंसा की। छुआछूत व जाति-पाँति का विरोध करते हुए उन्होंने अपनी वाणी में कहा है।

मेटो भेद अभेद कर लेणा
दुरमत दूर मिटाया।
अनेके रीति ओर कर देखो,
सब त्रिगुणमाया।।

(ज्ञान प्रमाण, बांणी, सं. 15)

बाबा रामदेवजी का रामदेवरा ऐसे तीर्थ के रूप में जाना जाता है जहाँ न केवल देश में दूर-दूर से श्रद्धालु आते हैं अपितु यहाँ बिना किसी ऊँच-नीच, जाति-पाँति एवं छुआ-छूत के श्रद्धा भावना से स्नान करते हैं। डाली बाई एक अनाथ लड़की थी, बाबा रामदेव जी ने उसे अपने घर में बहिन की तरह पाला-पोषा वह भी रामदेवजी की अनन्य भक्त मानी जाती है। रामदेवजी समाज की दलित एवं पिछड़ी जातियों की बस्ती में जाकर कीर्तन करते हुये इन जातियों में आत्मविश्वास बढ़ा कर उनके उद्धार का कार्य करते थे। रामदेवजी का पाँच प्रसिद्ध पीरों में स्थान है जिनको सभी लोग मानते हैं-

पाबू हडबू रामदे मांगलिया मेहा
पाँचों पीर पधारजो गोगाजी जेहा

ग्रामीण परिवेश में लोग बड़ी संख्या में परिवार के साथ आगे ध्वजा लेकर पैदल यात्रा करते हैं। ये लोग दूर -दूर से गाते-बजाते कीर्तन करते-करते रामदेवरा पहुँचते हैं और अपने को धन्य मानते हैं। मेले के समय तो यहाँ अपार जन समूह इकट्ठा होता है जो यहाँ के रामसरोवर जिसके बारे में मान्यता है कि स्वयं रामदेवजी ने बनवाया था उसमें स्नान कर अपने क्लेश-कष्टों को धोते हैं।

बाबा रामदेवजी का धार्मिक स्थान और उनके चमत्कारों की कथायें

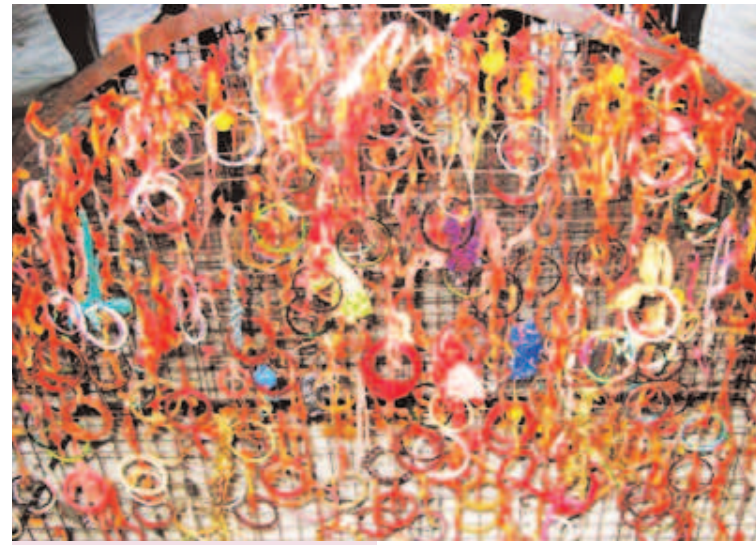

रामदेवजी को भगवान कृष्ण के अवतार, लोकदेवता एवं पीर के रूप में दूर-दूर से आकर श्रद्धालु पूजते हैं। ऐसा माना जाता है कि इनके पिता के कोई सन्तान नहीं थी, तब वे एक दिन द्वारकाधीश के गुजरात पहुँच कर भगवान से कहा कि यदि आप भगवान हैं तो प्रत्युत्तर क्यूँ नहीं देते। पुजारियों ने कहा कि वे भगवान सागर में रहते हैं तब इनके पिता सागर में कुद गये। वहाँ भगवान मिले जिन्होंने वरदान दिया कि मैं तुम्हारे छोटे बेटे के रूप में अवतार लूँगा। वहाँ भैरव राक्षस का आंतक है उससे धर्म को बचाना है।

लोकगीतों का स्वरूप लेकर लोगों की वाणी को पवित्र करते रहे हैं। रामदेवरा में आकर श्रद्धालु रामदेवजी के द्वारा किये गये जाति-पाति अछूतोद्धार और दीन-दु:खियों के कष्टों को दूर करने वाले चरित्र को सुनकर-यादकर अपने में एक संस्कार लेकर अपने समाज-परिवार में जाते हैं। जो कि समाज में भावनात्मक आत्मीयता और एकत्व बढ़ाने का कार्य करता है। यात्राओं और मेलों के समय स्थान-स्थान से आने वाले यात्रियों में मेल -जोल, आपसी परिचय और आत्मीयता बढ़ती है। वे एक दूसरे की भाषा-शैली, पहनावा, खान-पान तथा जीवन से परिचय प्राप्त कर, समायोजन को प्राप्त करते हैं। वस्तुत: धार्मिक तीर्थों में ऐसा आस्थामय सांस्कृतिक चुम्बकीय गुण होता है जहाँ अपने जीवन के अभाव कष्टों से उभरने और आत्मकल्याण के लिये लोग खिंचे चले आते हैं विश्वास का यह बंधन जन-जन को जोड़ता है। बाबारामदेवजी का चरित्र एवं रामदेवरा का धार्मिक तीर्थ भी अपनी भावना से लोगों के दु:ख दर्द दूर करते हुये उनकी कामनाओं को पूर्ण करते हुये उनका उद्धार करता है साथ ही उन्हें एकता के भाव में लाकर राष्ट्रीय एकता बढ़ाने का कार्य करता है। वास्तव में एक दूसरे की आत्मा को समझना और आत्मीय मानना ही जीवन का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। उसे पूर्ण करने का कार्य हमारे तीर्थ करते हैं। रामदेवजी के तीर्थ का भी राष्ट्रीय एकात्मतामय पुण्य स्वरूप है। ❑

Dakshineswar Temple - Saga of Hindu Religious Renaissance

Narayan Chakrabarty
Retired Professor and former Director & Consultant of West Bengal Biotech Development Corporation

Dakshineswar temple is the most revered Kali temple of Bengal. Ma Kali, in her different image and attitude, is the most revered goddess of the country - particularly in eastern part of India, three states namely Bengal, Assam and Tripura. Actually, Dakshineswar Kali temple is only second to Kamakhya Kali temple in reverence. Kamakhya Kali temple goddess is Tantrik Kali where sacrifice of animal blood is must. Whereas Dakshineswar Kali is known as Ma Bhabatarini - a form of Adyashakti Kali Mata - Ma is standing over Shiva, her consort. Therefore, following our Hindu custom, Ma is ashamed of standing on her husband and consequently she being ashamed, opens her mouth and holds her tongue with her teeth. Adyashakti is the primordial energy-consciousness-bliss, she is the creator of the universe and liberates jivia from the clutches of Maya. The amazing fact of the idol is that, the face of Ma Kali is so calm and soothing that it seems to be our mother - own family. There is also a striking difference between Dakshineswar Bhabatarini with Kamakhya and Tripureswari temples that is, the puja at Dakshineswar is performed with complete vegetarian bhoga consisting of sweets, fruits and vegetables. But in other two Shaktipeeths the bhoga must contain animal bloods! Only from 2019, the sacrifice of animals become prohibited at Tripureswari Ma Kali is a form of Ma Chandi here. There is another peculiarity in Tripureswari temple. There are two idols in the garbha griha - one is of 5 feet height and the other one is of 2 feet only - known as Chhotoma. So, among the three most famous Shakti peeths of three states, Dakshineswar temple stands alone with its idol and style of puja rituals. Ma Bhabatarini is like a lady of our home - so, the Sahajia way of Kali puja, adopted by its legendary chief priest Sri Ramkrishnadev, is different from the style of rituals at the other two Shakti peeths.

Dakshineswar temple was built like navaratna, a typical Bengal style of temple architecture. There is a large roof over the temple with four spires at the four corners of the roof. It is followed by a smaller roof over it where four corners of this roof also have four spires. At the middle of this roof is the biggest spire. The two roofs are in such angles that all nine spires can be seen from any place. Altogether, there are nine spires.

Dakshineswar temple has an interesting history. Rani Rashmoni, an intelligent, philanthropist bengali widow, who was in-charge of his husband's zamindary, was set to sail to Kashi for Ma Kali's 'darshan' in 1847. But in the night before her scheduled pilgrim-

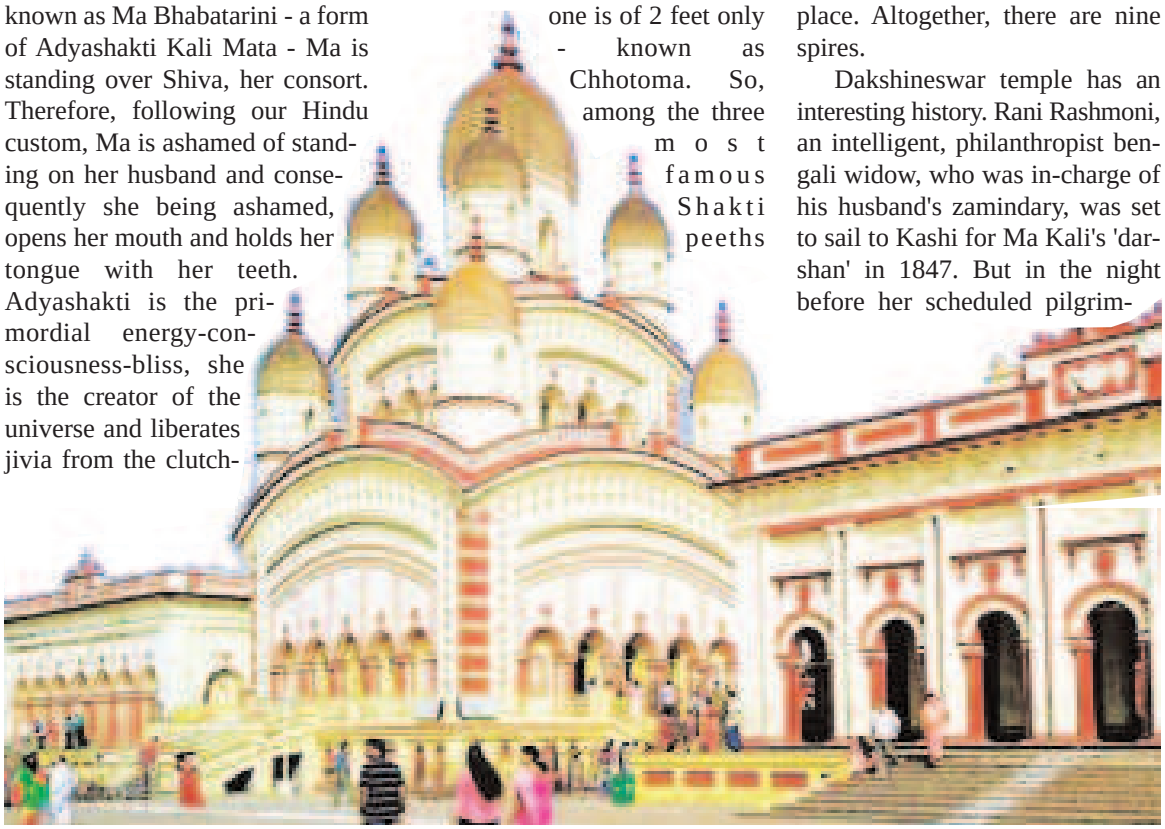

age, Rani dreamt of Divine Mother goddess Kali who advised her not to go to Kashi, instead, Rani should make a temple of Ma Kali at the bank of river Ganges and should arrange her worship there. Divine mother also told her in the dream that she will manifest her image in the idol of the temple.

Profoundly influenced by the dream, the spirited lady Rani Rashmoni, who was not only a devoted benevolent zaminder and pious widow, but also a shrewd administrator, immediately started searching the suitable land for the construction of the temple. She bought 20 acres of land at the bank of river Ganges from James Hasty, an Englishman. The land resembled the hump of a tortoise. The total temple area is of 60 bighas though,in the record book of the Trustee Board of the temple, it is 54.5 bighas. A portion of the purchased land was an abundoned Muslim burial ground. As per records, the total cost of the land was 42 thousand and 500 rupees. According to the record book, some portion of the temple land was donated for the construction of Vivekananda bridge over the river Ganges. Accordingly, present temple land is of 58 bighas. The construction of the temple building started in 1847 and was completed in 1855. The idol was installed on Snan Yatra day, 31st May, 1855. The main navaratna temple was of 14 square meter area and 30 meter high. The idol was placed in the Garbha Griha (sanctum sanctorium) on a thousand petaled lotus throne made of silver. The idol is south facing. Apart from this main temple, within the temple premises, there are a series of 12 identical Shiva temple in a single line at the river side. Each of these temples are painted white and the black Shiva lingas made of stone are placed inside. All the Shiva temples are east facing and are in 'aat chala' architecture - a typical bengal way. The Shiva temples are equally divided by a river bank. At the north-east of the temple premises, there was a Vishnu temple (popularly known as Radha Krishna temple). 550 mm idol of Krishna and 410 mm idol of Radha were placed on a silver throne in the sanctum sanctorium. It was repaired later and ultimately replaced by the present Devottar estate in 1930.

Dakshineswar temple was opened on the Snan Yatra day of Sri Jagannathji in 1955. The first chief priest of the temple was Ramkumar Chattopadyay and his younger brother Gadadhar as his assistant.

Rani Rashmoni was a spirited patriotic lady. Because of her impartial governance, she annoyed many including the high-ups of East India Company officials. When the inauguration day was approaching, the Brahmin Samaj objected to Rani's ownership of the temple of goddess Kali! They cited two reasons for objection. First, Rani being widow of low caste Mahishya and married to a further lower caste - dhobi community -, cannot own the temple; secondly, Rani's order of opening the temple to people of all castes with equal rights, that is, any Hindu can offer puja to the goddess Kali in the temple. Rani with her indomitable energy and indefatigable industry, managed to retrieve the situation to a large extent. The Brahmins relented when Rani made the chief priest from a high caste Brahmin and she declared that she should not have any role in the affairs of the temple. A Trustee Board was made to run the temple administration choosing its members from Brahmin caste. For the maintenance of the temple, Rani donated the earnings from her newly

acquired zamindary of Dinajpur (now in Bangladesh) to the temple Trust. Rani completed the registration of the Board of Temple Trust on 18th February,1861 and conspicuously she died on the next day. The head priest Ramkumar Chattopadhyay died about one year after assuming the charge of head priest of the temple. After the death of Ramkumar, Rani Rashmoni had chosen the young Gadadhar - famous in the name Ramkrishna - as head priest. The Brahmins again opposed it strongly. Their main opposition was the way Ramkrishna mingled with and allowed the lower caste people of the society and his way of simplicity in performing the puja. This time, they also tried to destroy the temple property and even attempted do harm, to the extent of physical assault to Ramkrishna. Opposition to the appointment of Ramkrishna was not only from Brahmin Samaj, but also from the family of Rani. At this point of time, with her administrative acumen and outrageous courage, Rani overcame these obstacles and went ahead with the appointment of Ramkrishna Chattopadyay alias Gadadhar as Chief priest of Dakshineswar Bhabatarini temple. In this venture, Rani was ably assisted by one of her sons-in-law Mathurbabu. Afterwards, with his immense help, Rani was able to make the Board of Trustee of the temple registered just before her death.

After the death of Rani Rashmoni, the name of the Bhabatarini temple of Dakshineswar became immensely popular with the people including so called high society of Bengal. The fame and carishma of Bhabatarini and her priest son Ramkrishna became known to not only the people of Bengal, but also of whole India. The credit was completely of Gadadhar, now famous in the name Ramkrishna. After some years, Ramkrishna became Kalpataru to his desciples on 1st January. From then, he became Sri Ramkrishna Parmhansha (supreme knowledgeable) to his followers. Ramkrishna may not have much formal education, but his way of puja to Bhabatarini and his embracing everyone, without considering caste and social status, made everyone feel oneness with him and at the same time, Ma Kali, in the form of Ma Bhabatarini became mother of everyone's house. Hindus began to feel that Ma is the protector of everyone. Devoid of hard rituals and tantrik way of puja offerings with fresh blood, Ramkrishnadev made the Sahajia way of puja. He was a philosopher of the highest order and he preached the philosophy of equality and offering love and respect to the god from the core of the heart. All his basic principles were preached by his most illustrious desciple Swami Vivekananda. Ramkrishnadev stayed in a small room at a corner of the temple premises with his wife Saradamoni Devi. Saradamoni propagated her husband's philosophy of love and respect to everyone including animals and trees. It made her known as Ma (mother of all lives). After the death of Saradamoni, their room inside the temple became a place of pilgrimage.

Dakshineswar temple was built like navaratna, a typical Bengal style of temple architecture. There is a large roof over the temple with four spires at the four corners of the roof. It is followed by a smaller roof over it where four corners of this roof also have four spires. At the middle of this roof is the biggest spire. The two roofs are in such angles that all nine spires can be seen from any place. Altogether, there are nine spires.

The philosophy of Sri Ramkrishna was propagated by his desciples, the most prominent among them is Narendranath Datta, known as Swami Vivekananda - his post sanyash name. Vivekananda and other desciples of Sri Ramkrishna reffered him as Thakur (god) and Saradamoni as Ma. Actually, the philosophy of love for all, along with treating Ma Bhabatarini as the lady if our own fanily attracted people's mind most. This made the Dakshineswar Kali temple most famous shaktipeeth of Bengal.

The temple of Ma Bhabatarini of Dakshineswar is still run by the Trustee Board. It has no legal attachment with Ramkrishna Mission of Belur. At present, managing trustee is Sri Kushal Chakraborty. Special puja are offered every year on three special days; the inception day of the temple, that is Snan Yatra day, in the night of amabashya day after Durga puja, and Kalpataru day. ❑

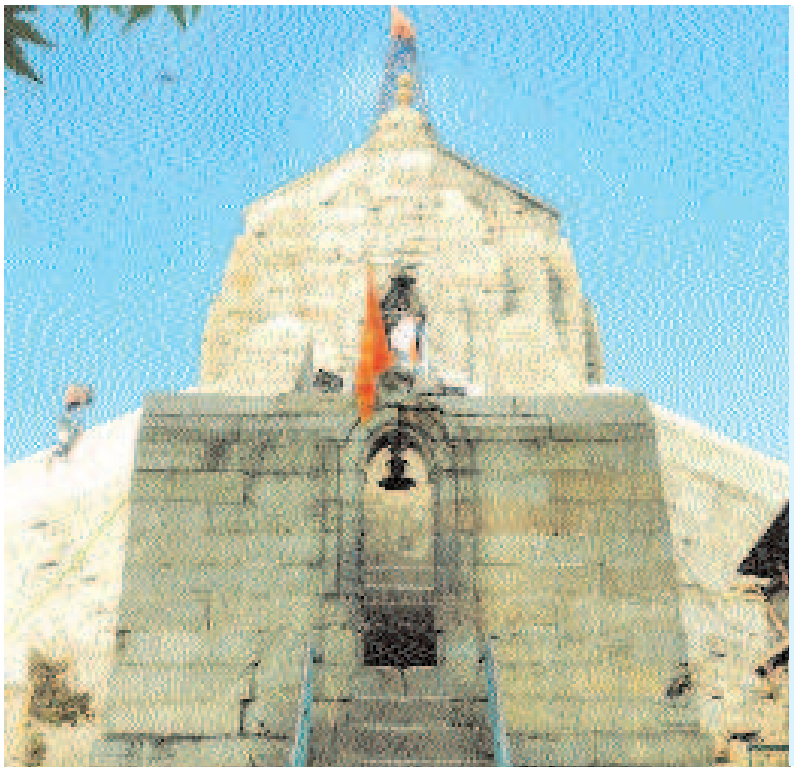

Religious Shrines of Jammu and Kashmir

Shankara charya Temple

Darshan Bharti

Poonch (J&K UT)

Shankaracharya Temple dedicated to Lord Shiva is believed to be the oldest shrine for worship in the Kashmir Valley. The Shankaracharya Temple is an ancient Hindu shrine located on top of the Gopadari hill on the Zabarwan Mountain in the scenic city of Srinagar. It is also known as the Jyesteshwara temple and Pas-Pahar by Buddhists and recently also took on the moniker of Takht-e-Suleiman (Throne of Solomon). Located at a height of about 1100 feet, the shrine offers a panoramic view of Srinagar city. It is a popular religious and spiritual center of pilgrimage in Jammu and Kashmir, attracting numerous devotees and visitors from all over the world.

This splendid temple was built sometime in 200 B.C by the great Indian Emperor Ashoka's son, Jalauka. It was renovated and rebuilt by King Gopadatta of Kashmir in the 1st century. The king dedicated the shrine to Jyesteswara, and it was subsequently renamed Shankaracharya by the Hindu Maharaja in 1848. Several Persian inscriptions are found inside the temple which indicate it dates back to earlier times. Zain-ul-Abidin is believed to have repaired the roof which supposedly collapsed during an earthquake. The steps from the Durga Naag temple side were constructed by the Dogra King Gulab Singh and the Maharaja of Mysore is credited with installing electrical fittings inside the temple.

The statue of Adi Shankaracharya was placed inside the temple by the Shankaracharaya of Dwarkapeetham in 1961. The present structure is believed to date back to the 9th century and the Shivalinga was placed inside in the 19th century during the reign of the Sikhs.

In Kalhan's Rajtarangini, this hill was mentioned as Gopadri. It offers views of the beautiful city of Srinagar. The Shankaracharya Temple after renovation was covered by a modern ceiling. The temple is very famous among religious Hindu tourists. The pilgrims on Amarnath Yatra visit Shankaracharya Temple, reaching by riding 243 stone-built stairs. The temple is active and live. Deity worship regularly takes place here. The pilgrims visit this temple under the protection of the army.

Many sources suggest that the temple was a Buddhist place of worship at some time and was changed into a Hindu temple by the great saint and philosopher Adi Shankaracharya who sparked the revival of Hindusim in the country. He is believed to have lived in the temple and underwent severe penance to renew the tenets of the Hindu faith. The Shivalinga in the Sanctum Sanctorum was the focus of Adi Shankaracharya's worship and he is said to have attained a higher plane of understanding.

Many stories abound about the visit of Jesus Christ to the temple, with inscriptions within the temple clearly supporting this fact, and it is thought that he might even have lived here for a long period of time.

The temple is open for regular worship and many pilgrims visit the shrine during the Amarnath Yatra. Two hundred and forty-three steps lead to the temple and a few more lead to the temple hall. The view from the hilltop is stunning and offers an aerial outlook of Srinagar city. Srinagar is easily accessible by several modes of transportation from most cities and towns of India.

Vaishno Devi Temple

Vaishno Devi Temple is one of the oldest temples in India. It has a rich history which is still unknown to a lot of people. Nestled in the Trikuta mountains, Vaishno Devi Temple, 61 km from Jammu, is visited by thousands of devotees every year. It is considered to be one of the holiest pilgrimage places for Hindus in north India.

A study says that the Vaishno Devi Temple is millions of years old. There was no mention of truth that a female deity was worshiped. The acknowledgment of worshiping Shakti was started, in the Puranic period, at the time of Mahabharata. Before the famous war of Kurushetra between the Kauravas and Pandavas, Shri Krishna advised Arjun to take blessings of Mother Goddess for victory. A good amount of people believed that Pandavas were the first to build the temples at Bhawan and Kandoli for showing gratitude for Mother Goddess.

It is also believed that there were five stone structures of Pandavas built adjacent to Trikuta mountain in the holy cave. The historical visit to the Vaishno Devi Temple is of Guru Gobind Singh and was said to be there in the Holy cave who had gone there via Purmandal.

A lot of people still have a belife that the energies of MaaVaishno Devi surround the shrine of Vaishno Devi Temple. The head of Goddess Sati fell there which has been disputable whereas, the other claims that Goddess Sati's forearm fell here at this place. The Vaishno Devi Temple is the oldest and holiest shrine of all Shaktipeeths.

It is believed to be true that Vaishno Devi was at first called Trikuta. It is also conceived that when she was 9 years old, she performed penance on a seashore by praying to the Avtar of Lord Vishnu that is Lord Rama. Amid the prayer, Lord Rama has passed the shore looking for his wife that is Goddess Sita who was abducted by the Demon Ravana.

Seeing Trikuta deeply immersed in prayer, Lord Rama blessed her and Trikuta told Rama that she had accepted him as her husband. But at that time, Lord Rama was already married to Goddess Sita and could not be unfaithful to her. So, he gave her a name called Vaishnavi and vowed that he would marry her in Kalyug in the Avatar of Kalki.

Further, it is believed that he had told her to meditate in a cave near the Trikuta range and gave

her some things for her protection like an arrow, a lion, a bow, and a small army of monkeys.

Some traditions believe this Shrine to be the holiest of all Shaktipeeths (a place where the Mother Goddess, the Eternal Energy has Her abode) since the head of Goddess Sati fell here. However, this has been disputable according to several scriptures. Others claim that it is the place here Goddess Sati's forearm fell. Nevertheless, in the holy shrine of Vaishno Devi, one does find stone remains of a hand known as Varad Hast (hand that grants wishes).

Perhaps the oldest indication of the visit of a historical figure to the holy shrine of Vaishno Devi is that of Guru Gobind Singh (1666-1708) who is said to have gone there via Purmandal which was the old route to the Holy Cave passed through this well-known pilgrimage centre.

Amarnath Cave

The holy shrine of Amarnath Ji, or Amarnath Cave, is located at an elevation of 3,888 meters approx 29 kilometers from Pahalgamin the Lidder Valley. Inside the cave is an Ice Shiva Lingam.The place has a large concentration of small and large glaciers such as Kolahai, Nehnar and Bodpathri. It is approachable through two different routes - via Pahalgam in south Kashmir and Baltal in north-east Kashmir. Both are narrow tracks snaking through a stunning landscape and mostly flanked by steep cliffs.

Devotees visit it in large numbers from June to August, with the pilgrimage tour famously known as Amarnath Yatra, which begins from Chandanwari. It is considered to be one of the 18 Maha Shakti Peethas, or the holiest shrines in Hinduism. Besides seeking blessings at the Amarnath Temple, the views surrounding it are extraordinary.

The place where the Amarnath Cave stands today is believed to be the same place where Lord Shiva explained the meaning of life and eternity to his consort & wife, Goddess Parvati. According to legends, Bhrigu Muni, a famous sage in Hinduism, was the first person to have discovered this holy site. At that time, the entire Kashmir Valley was submerged under water, and Kashyap Muni, another powerful sage, drained the waters with his divine powers. As the waters cleared, Bhrigu Muni was the first person to have the site of the Shiva Lingamand it was he who informed the existence of the divine ice shrine to the local villagers.

According to the local folk tales, it is said that a poor Muslim shepherd named, Buta Malik found the cave in 1850.

Going by the legend, the shepherd was given a bag of coal by a saint which later turned into gold. To sincerely thank him, the shepherd went back but instead of finding the saint he ended up finding the cave and the Shiva Linga.

Bahu Fort

It has been said that Bahu fort is the oldest fort in Jammu city, and was originally built by Raja Bahu Lochan almost 3000 years ago. Legend has it that when on a hunting trip, Raja Bahu witnessed a tiger and a goat drinking water side by side at the same location at the Tawi River. He was surprised to see tiger not attacking the goat. After this incident, he decided to establish his new capital here, as the scene he witnessed at this site represented peaceful coexistence. Though, his brother Bahu Lochan is credited with building and construction of the Bahu fort.

Over the years this fort underwent demolition due to attacks

from invaders and weather also played a role. This new fort was reconstructed by Maharaja Gulab Singh, during Sikh Empire around the 19th century This fort was further refurbished by Maharaja Ranbir Singh in the later years. Inside the Bahu Fort, there is a temple dedicated to the Hindu goddess Kali. Some people are of the opinion that the image of Goddess Kali placed in the temple, was brought from Ayodhya.

The Bahu fort has been declared as a heritage site by the erstwhileJKstate government. This Fort is located just opposite to the old Jammu city. It is built on a plateau of a rocky hill on an elevation of approximately 300 metres on the left side of the river Tawi

Kali Mata Temple

Bawe-Wali Mata Temple also known as Mahakali (Kali Mata) temple has been built on an elevated platform inside the Bahu fort. The idol of the Goddess is made of white marble and placed on a 1.3 metres high podium. People from different parts of Jammu region and other states come to pay their obeisance to Goddess Mahakali. There is a Fair organized every year during Navratras. During this time devotees in large numbers come to pray here at this temple.

Bagh-e-Bahu

Bagh-e-Bahu is one of the popular sightseeing attractions of Jammu located along the ancient Bahu fort in the state of Jammu and Kashmir. It is a famous and beautiful terraced garden built around the fort. The beautiful garden is laid identical to Mughal Garden and is situated on the embankment of Tawi river. This beautiful garden boasts of a bewitching topography that is graced with lush greenery, flower beds having different species of colourful flowers.

Shri Budda Amarnath

Located in the district of Poonch, Buddha Amarnath Temple stands 4,600 ft above the sea level. Its picturesque location, valleys and the gushing River Pulasti nearby, magnify the beauty of the temple. People throng this place for Amarnath Yatra and it is considered as one of the most important places of worship for Hindus. Dedicated to Lord Shiva, the temple has a Chakmak Shivlingam . Thousands of pilgrims, due to their immense faith in Lord Shiva, take the arduous journey of cutting across crooked paths and mountains to reach this temple, to seek the blessings of the lord. Many believe that it is sacred if pilgrims take a bath before entering the temple. Legend has it that the river flowing here has been named after Rishi Pulsata, the grandfather of demon Ravana.

Shankaracharya Temple dedicated to Lord Shivais believed to be the oldest shrine for worship in the Kashmir Valley. The Shankaracharya Temple is an ancient Hindu shrine located on top of the Gopadari hill on the Zabarwan Mountain in the scenic city of Srinagar. It is also known as the Jyesteshwara temple and Pas-Pahar by Buddhists and recently also took on the moniker of Takht-e-Suleiman (Throne of Solomon). Located at a height of about 1100 feet, the shrine offers a panoramic view of Srinagar city.

The temple of the Buddha Amarnath ji has been constructed with one big stone. There are four doors in the temple north, east, west and south sides which indicate that the doors are open for all varnas. A large number of old and new idols have also have been placed inside the temple premises and Lord Shiva manifested himself in the form of 'Chakmak' white stone which is natural Shiv Lingham.

There are numerous legends associated with the Shrine. A story is that Lord Shiva, accompanied by Goddess Parvati on his trip to Amarnath from Kailash made a halt at Budha Amarnath ji Raipura Mandi and the other story is connected with Rishi Pulasta, the grandfather of the Ravana. It is said that he had a darshan of Lord Shiva at Buddha Amarnath ji. It is also believed that Budha Amarnath "chattani" is older than the Amarnath ji of Srinagar and the pilgrimage to Amarnath cave in Srinagar remains incomplete without a visit to this place. It is believed that the Almighty Shiva grants wishes to everyone who makes a pilgrimage to Shri Buddha Amarnath ji in Mandi Poonch. Before partition between India and Pakistan, a large number of people usually used to visit Shri Buddha Amarnath ji through areas now illegally occupied by

Pakistan. Now thousands of people from different parts of the country visit Buddha Amarnathji yatra, on Raksha Bandhan and also on the eve of Shivratri.

The Kheer Bhavani Temple

The Kheer Bhavani temple is an ancient Hindu religious shrine located in the Union Territory of Jammu and Kashmir. It is dedicated to Ragnya Devi, an Avatar of Goddess Durga who is deeply revered among the Hindus of Kashmir. Situated 22 km east of Srinagar near the village of TulMul, the temple is set amongst picturesque surroundings covered with Chinar trees.

It is constructed above a sacred spring which is said to change its colours with the onset of every new season. The tradition of offering kheer to the presiding deity in the spring is a truly unique feature of the temple, with many preparing the dish themselves. It is a major pilgrimage center for Hindus and many devotees from all over the world visit the temple to seek the blessings of the deity.

Even though the temple is frequented by visitors throughout the year, it literally comes alive on the occasion of Shukla Paksha Ashtami. Devotees observe a fast on this day and gather at the temple to offer prayers to the Goddess. Bhajans and Yagnas are also performed on this day to propitiate the Goddess. Jesht Ashtami is another such occasion when people throng the temple to have a glimpse of the deity. The festival concludes with a Maha-Yagna being conducted to please the Goddess. Fairs and yagnas are organized during the annual festivals and Navratnas, with devotees

from all over participating in the proceedings.

Why is Kheer Bhawani famous? Well, the water of Kheer Bhawani, at very few instances, has changed to red and black in the past, deeming these incidents to be inauspicious because something bad always happens following this, according to locals

According to an age-old traditional folklore, the water of Kheer Bhawani changes colours depending on the situation or environment in the valley. The darker the shade of the water, the more dangerous the situation or event to occur. Locals believe Kheer Bhawani predicted the Kashmir floods in 2014, the flood that killed nearly 200+ people, leaving damages to over 40,000 people. The Kund, literally meaning 'pond' or 'spring' turned red just one day after the celebration of Janmashtami, and this alarmed the life out of the locals as this didn't happen very often. Around 15 days later, the floods caused devastation to the valley.

The Ramkund Temple

The Ramkund Temple is one of the most ancient and important religious sites of the Jammu region. The temple is located at a sleepy village called Narol, which is 11 km away from Mendhar Tehsil. As per archeological survey, this beautiful and ancient temple was built by King Lalitaditya during the period of 724 to 761 AD. While local people believed that the temple was originally built by Ram himself on his way to Kashmir and later Lalitaditya renovated it. There are three beautiful springs around the temple and they are known by the name of Ram Kund, Lakshman Kund and Sita Kund. Taking holy dips in these springs is considered to be very auspicious. Devotees in a large number come to visit the temple in the first half of the Hindu month of Chaitra and take bath in these kunds.❑

Significance of Holy Shrines in Bharat's Unity

Dr. TS Girishkumar
Member, ICPR

Shrines, the holy places of Bharat are also great centers of learning of the old; but for present, they are also great unifying centers. Temples were always centers for culture, literature, art forms and in short, the complete learning center, all just in one place. From basic schooling to higher education into many branches of knowledge took place in temples, and when one wanted to go for further higher education, then only one went to a Gurukul or university. For all practical purposes, temples gave sufficient training at least up to under graduation level.

Kerala – God's own country

People must have heard this saying in much common manner by all kinds of people from Kerala. This simply gives the impression that Kerala is Godly in some respect, or divine in some respect. But this is not the case at all, the expression 'God's own country' has an entirely different connotation as well as history or context. It is interesting to know this particularly when both communists, Islamists and others keep repeating this to give the impression that Kerala is somehow very outstanding.

Kerala was composed of three kingdoms, Travancore (the largest and most powerful), Cochin and Malabar. Malabar was already occupied by the British and was a part of Madras Presidency. On 03 – January – 1750, the then king of Travancore Anizham Thirunal had handed over the state of Travancore to Bhagwan Mahavishnu and declared Mahavishnu to be the ruler of Travancore. Even otherwise, the Travancore kings were known as Sri Padmanabha Dasa, and this king had made it literally the case, and from then, Travancore kings ruling the state only on behalf of Bhagwan Mahavishnu became very official.

This made Travancore Bhagwan Mahavishnu's country, making it God's own country. After independence when Travancore, Cochin and Malabar were brought together to form Kerala state, the expression God's

own country is made applicable to entire Kerala and people happily started using it without knowing that God's own country means Mahavishnu's own country.

Padmanabha Swami Temple

The deity of this temple is Mahavishnu in the Yogic posture of lying down on Sheshnag. Sheshnag is also known as Anantnag: and the lying yogic posture of Mahavishnu become Anantasayanam – and this posture makes Bhagavan Ananta-padmanabha Swami. There is Padma – lotus at his navel, and Brahma sitting in it, his right hand is resting on a Shivling, other deities are also present near him including Lakshmi.

From Anantasayanam Vishnu, the town gets the name Anantapuram, it is Shri Anantapuram since it is Bhagwan, and the word Thiru in Tamil means Shri. Hence the town becomes Thiru-Anantapuram, that became Trivandrum since the Britise could not pronounce it. It is like the Greeks making Pataliputra Palibotra and Chandragupta Sandrakottus. Somehow it seems better than making KarnavatiAhammad-Abad, Bhavnagari Hyder- Abad, Prayagraj Illahi-Abad and many more such names.

The temple is a blend of Chera and Tamil architecture style, with 'Gopuram' or huge entrance as we see in Meenakshi temple in Madurai. The Yogic posture of Mahavishnu as lying on Sheshnag is rarely found in Bharat. Records say that this huge idol is built with 12.008 'Salagramas' with a rare mixture of natural ingredients including burned rice husk. Legend also says that the temple was consecrated by Bhagwan Parasurama.

The antiquity of this temple is evident from the fact that many puranas like Brahma purana, Matsyapurana, Varahapurana, Skandapurana, Padmapurana, Vayupurana, Bhagavatapurana etc. refer this temple as one of the richest, with almost everything-made of gold. It is also mentioned that even the temple walls are made of gold. The Tamil literature of the seventh and eighth centuries glorify this temple as one important among the 108 holy Vaishnava shrines of Bharat. It was always the case that this temple had always been a great center of learning of everything, that is, all branches of knowledge including aesthetics which is evident from music, art and other forms.

Learning was meant for all aspirants of knowledge. It was only much later the anti-Bharat historians started making stories that temples entertained only Brahmin children, but in reality, Shudra children were in majority as students in most of the temples. Ruling British remained desperate to destroy Hindu unity in every possible manner, and it was only natural for them to create and spread false history.

The invasion of Islam through Tippu of Mysore

Tippu, the ruler of Mysore had nothing to do with Mysore kingdom as such. Mysore kingdom was always ruled by the Wadiyar kings, and they always remained the rulers of Mysore. Remember, it was a Wadiyar king who was amazed in meeting Swami Vivekananda and remained so worried as how to respect the Swamiji and how to make him happy. Swamiji was not interested in all wealth and other things the Mysore king was offering, and finally Swami Vivekananda asked him to buy a railway ticket to Shornur in Kerala only. Wadiyars were hardcore Hindu kings.

Hyder Ali was a good general, and the Wadiyar made him his army head. Slowly, Hyder Ali started becoming powerful, and was virtually ruling Mysore, given his efficiency. The then Wadiyar king was not really caring about statesmanship or ruling

his people with welfare, but Hyder Ali attended to all these. Interestingly, at no point Hyder Ali tried to overthrow the Wadiyar kingdom, actually they co-existed. The Wadiyar remained the king of Mysore and Hyder Ali ruled Mysore. Perhaps, the people would not have accepted a ruler who was not a Wadiyar. Tippu was the son of Hyder Ali, who ruled Mysore – but the Wadiyars remained rulers of Mysore with all pomp and show, though Hyder Ali and Tippu were actually running the show. They had created a seperate headquarters for them at another place called Sriranga-pattanam, and controlled everything from there while the Mysore palace continued as usual.

One thing we get to notice; Tippu did not execute his Islamic fundamentalism in Mysore, but he did let out all his frustrations outside Mysore into areas in places like Kerala. His army marched towards Kerala destroying temples. Looting wealth, destroying idols and killing Hindus who did not convert to Islam. Geographically, Kozhikode or Calicut falls near Mysore, but Thiruvananthapuram is much far. Nonetheless, Tippu longed to reach Thiruvananthapuram, conquer, and loot and destroy Sri Padmnabhaswami temple.

The temple is a blend of Chera and Tamil architecture style, with 'Gopuram' or huge entrance as we see in Meenakshi temple in Madurai. The Yogic posture of Mahavishnu as lying on Sheshnag is rarely found in Bharat. Records say that this huge idol is built with 12.008 'Salagramas' with a rare mixture of natural ingredientsincluding burned rice husk. Legend also say that the temple was consecrated by Bhagwan Parasurama.

He did proceed : but at half way near Cochin, he was attacked by the Army of Travancore. Tippu was humiliated by the Army head Padmanabhan (another!) who made Tippu fall of the horse and limp off. Tippu received deep cuts especially on his legside as he was on horseback; and spent the rest of his life limping from the charge of the army head Padmanabhan, who is also known as Vaikom Padmanabhan Pillai.

The kings of Malabar had already given their wealth, including the temple wealth to Travancore for safe custody, or it would be looted by Tippu. They knew very well that the honest Hindu kings of Travancore would never touch other's property. Even otherwise, the kings of Travancore were only Dasas of Shri Padmanabha, and the entire property whatsoever only belonged to him. There already existed several cellars filled with gold, precious stones and diamonds under the garbha graham of the temple. It all still remains

there: the kings never used this money for their own use and till date this indeed is the case.

Methan Mani

This is an interesting episode. Methan is the Malayalam version of Mleccha in Sanskrit, and the meaning is clear. In Malayalam, the Malayalam version of the Sanskrit Mleccha Methan, is used to refer to the Muslims. Mani normally means a bell, but it also means a clock, time etc. from the chime of time keeping clock. So, Methan Mani means Muslim clock.

The Methan Mani is a clock erected outside the temple, out side the temple walls to show time to people as clock towers were erected in many places. The peculiarity here is this, the clock is erected in memory of the defeat of Tippu by the Travancore army, and named it Methan, Muslim clock.

The clock is indeed very interesting, whoever designed it is really both thoughtful and funny at the same time. The clock is as usual showing time with normal machinery, but at the chiming portion, it adopts the method of a cuckoo clock. At the chime, there is a picture of a bearded Muslim and two goats on either side of his face. Actually, these are not simple pictures, they are carvings, probably on wood in colour. At each hour the clock chimes and it is this chiming that becomes interesting. The Muslim opens his mouth as if to speak, and when the mouth is widely open, both the rams either side hit the Muslim hard so that he closes the mouth. The clock chimes then. One chime for one o clock, and one hit by the rams to the Muslim who opens his

mouth once. This repeats every hour, and in my childhood when I went to see Methan Mani, I waited for twelve o clock to witness twelve hits! The clock is still working, the rams are still hitting the Muslim whenever he opens his mouth to speak.

The clock gives great message, where one ought to be stopped, there one must be stopped. Undoubtedly, Ahimsa is Param Dharma, but himsa for the sake of Dharma is still another param Dharma. (ahimsa paramo dharma – dharma himsa tathaiva ca).

Such temples, such Tirthsthanas, were and are great amalgamating principles of oneness and unity of Bharatiya Sanskriti and Nationhood. Bharatiya Sanskriti preserves Bharatiya oneness: Bharatiya Sanskriti creates oneness of Bharat. But the Bharatiya Sanskriti itself is preserved through and by the Hindu Dharma, the Bharatiya Sanskriti is transmitted from generations to generationsis also by the Hindu Dharma. One thing becomes very clear: without the Hindu Dharma, there shall not be a Bharatiya Sanskriti and Unity of Bharat. The unity of Bharat is strengthened through and by the holy tirthas and temples.

Tirthas, temples as well as other Hindu holy places are greatly unifying phenomena. Going beyond all kinds of discomforts and difficulties, people of all strata from all over Bharat keep assembling in such places with one mind, one thought and one attitude. For the entire period of their stay at such places, they all forget their differences and co-exist with one soul and spirit. And, what is more, this feeling of oneness shall stay with all of them lifelong.

The Sabarimala temple in Kerala is such a phenomenon. The pilgrims going there actually shun of their very identities itself, every one becomes 'Ayyappa' and that shall be their name till the pilgrimage is completed. Pilgrims from all over reach there, and should one go to see how they co-exist in everything during the entire process of pilgrimage, it shall indeed be amazing. This makes tirthas really holy for people of Bharat. ❑